

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यु जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १४	सितम्बर २००९ (४, ५ अक्टूबर को प्रेषित)	अंक-१
संस्थापक-संरक्षक श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज संरक्षक एवं प्रकाशक डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी) प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट सम्पादक आचार्य दिवाकर शर्मा 220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001 मो०- 09971527545 सहसम्पादक डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001 दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755 प्रबन्ध सम्पादक श्री ललिता प्रसाद बड़धवाल सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001 0120-2756891, मो०- 09810949921 सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं) डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779 श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989 श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379 श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338 श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852 डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र : श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन, पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र० 485331 07670-265478, 05198-224413 वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल) दूरभाष-01334-260323 श्री गीता ज्ञान मन्दिर भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) दूरभाष-0281-2364465 पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता आचार्य दिवाकर शर्मा, 220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001 मो०- 09971527545	

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकिरामायण सुधा (५३)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (८४)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य	पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	१०
५.	रासपञ्चाध्यायी विमर्श (३)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१२
६.	प्यारे लगै गुरुदेव	श्रीमती कमला शर्मा 'आशा'	१४
७.	सेवा का स्वरूप	प्रस्तुति- श्रीशेषधर जी शुक्ल	१५
८.	माँ के उपदेश का महत्व	श्रीशिवकुमार गोयल	१७
९.	भोगी और योगी का जीवन	'कल्याण' से साभार	१८
१०.	भगवान् आज ही मिल सकते हैं	परमवीतरागसन्त श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदास जी	१९
११.	श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में श्री हनुमच्चरित्र	श्री पं० बालकृष्ण कौशिक	२५
१२.	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम	प्रस्तुति- पूज्या बुआ जी	२८
१३.	मन को नियन्त्रित रखने से आध्यात्मिक लाभ	पं० श्रीविनय कुमार जी	२९
१४.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' से अभिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-17 तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय 220 के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

भारतीय पर्व हमें शुभ सन्देश देते हैं (दीपावली पर्व मंगलमय हो)

भारतीय परम्परा में त्यौहारों का बहुत अधिक महत्व है। त्यौहार के लिए पर्व शब्द का भी प्रयोग किया गया है। पर्व अर्थात् जो प्रसन्नता देता हो। इस दिन व्यक्ति और समुदाय दोनों विशेष प्रसन्न होते हैं, अपने दैनिक जीवन से हटकर कुछ विशेष नियमों का पालन करते हैं, साफ-सफाई आदि करते हैं, विशेष जप-तप नियम करते हैं। इतना ही क्यों, पर्वों के महत्व पर विशेष अनुसन्धान करने वाले तो इन पर्वों का आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक स्वरूप भी सिद्ध करते हैं। पारिवारिक पर्व, सामाजिकपर्व, जातीय पर्व, साम्प्रदायिक पर्व तथा राष्ट्रीय पर्व आदि भेदों से इन पर्वों को जाना जाता है।

दीपावली अथवा दीपमालिका पर्व प्रकाश का पर्व है। अधर्म पर धर्म की जय का प्रतीक है। दानवता पर मानवता की विजय का प्रतीक है। आतंकवाद को भारतीय पौरुष के द्वारा कुचले जाने का दिवस है। कण कण से अन्धकार को हटाकर प्रकाश के दीप जलाने का पुण्यपर्व है। ऐतिहासिक तथ्य हैं कि आतंकवाद के सरगने राक्षसराज रावण को ध्वस्त करके अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, जगन्निघन्ता, धर्मरक्षक भगवान् श्रीमद्राघवेन्द्र सरकार इस दिन श्रीअवध आए थे। श्रीअवध सहित सम्पूर्ण भारत में दीपावली मनाई गई। आज भी अपने अपने घरों को सजाकर आस्तिक महानुभाव दीपावली पर्व पर दीपक जलाते हैं, मिठाई बाँटते हैं, गणेश-लक्ष्मी पूजन करते हैं, एक दूसरे को बधाई देते हैं। व्यापारी वर्ग तो अपने बही-खातों को मांगलिक मन्त्र-यन्त्र से सजाते हैं। सारे हिन्दुसमाज में हर्षोल्लास का वातावरण होता है।

कौन नहीं जानता कि इसी दीपावली के दिन सारी हिन्दु जाति राक्षसराज रावण कुम्भकरण और मेघनाद के बहुत विशाल पुतले बनाकर फूँकती है। जब सायंकाल तीनों पुतलों में रखी विस्फोटक सामग्री धू-धू करके जल उठती है तब प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति के मुख से यही निकलता है कि भारतीय संस्कृति, भारतीय जीवनमूल्यों, आदर्शों एवं विचारों के साथ खिलवाड़ करने वाला बड़े से बड़ा वैभवसम्पन्न व्यक्ति भी एक दिन विनाश को प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति स्वरूपा भगवती सीताजी का अपहरण करने वाले रावण के विशाल परिवार में कोई नहीं बचा। अनेक पर्वों के अन्दर छिपे ऐसे ही विशेष सन्देश सभ्य समाज के लिये सदैव आकर्षण के बिन्दु रहे हैं। सामान्य जनमानस के लिए भले ही पर्वों पर मौजमस्ती का वातावरण रहता हो किन्तु समाज के प्रबुद्ध वर्ग के लिए अथवा राष्ट्रधर्म दोनों का हितचिन्तन करने वाले महानुभावों के लिए भारतीय परम्परा के सभी प्रमुख पर्वों से शाश्वत सन्देश, गम्भीर शिक्षा तथा अलभ्य लाभ प्राप्त होते हैं।

सभी भारतवासियों को, श्रीराघव परिवार के सभी महानुभावों को श्रीतुलसीपीठसौरभ के सभी सुधी पाठकों को हम भी दीपावली पर्व की हार्दिक बधाइयाँ प्रदान करते हैं, साथ ही भगवान् श्रीसीताराम जी के श्रीचरणों में विनम्र प्रार्थना करते हैं कि जो लोग किन्हीं भी कारणों से भारतीय चिन्तन, भगवद्भक्ति और भारतीय परम्परा से विमुख होकर मनमाना आलाप गाते रहते हैं, भारतीय श्रद्धाकेन्द्रों के प्रति भयंकर विषममन करते रहते हैं उन सभी को सद्बुद्धि देने की महती कृपा करें। भारतीय परम्परा परिष्कार में विश्वास करती है बहिष्कार में नहीं। हमारा ही उद्घोष विश्वविदित है-

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।

सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।

शान्तो मुच्येत बन्धोभ्यो मुक्तश्चान्यान्विमोचयेत्।

पुनः दीपावली पर्व की सभी को मङ्गलकामनाओं के साथ-

आचार्य दिवाकर शर्मा प्रधान सम्पादक से केवल
मोबाइल नं०- 09971527545 पर ही सम्पर्क करें

आचार्य दिवाकर शर्मा
प्रधान सम्पादक

(गतांक से आगे)

वाल्मीकिरामायण सुधा (५३)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

काव्यप्रकाश का एक श्लोक है-

जनस्थाने भ्रान्तं कनकमृगतृष्णान्धित धिया
वचो वैदेहीति प्रतिपदमुदश्रु प्रलपितम्।
कृतालंका भर्तुर्वदनपरिपाटीसुघटना
मयाप्तं रामत्वं कुशलवसुता न त्वधिगता।

यहाँ दोनों अर्थ हैं एक तो कुशलवसुता अर्थात् धन नहीं मिला और कुशलव की माता सीता तो केवल राघव को मिल सकती है यही राघव का साधारण लक्षण है। रामत्व सब जगह हो सकता है पर सीताविशिष्टरामत्व केवल दशरथनन्दन आनन्दकन्द कौसल्यानन्दवर्धन प्रभु श्रीराम में ही रहेगा। अतः इतर रामों से राम का सबसे मुख्य व्यावर्तक यदि कोई है तो सीता पदार्थ है। अब अर्थभावेन इतः जगतः प्रक्रिया विवर्तते विवर्त होती है विस्तृत होती है। विशिष्टा सती प्रस्तुता भवति यह यहाँ का तात्पर्य है। आज भगवान आनन्दकन्द प्रभु चिन्तित हो रहे हैं। सुग्रीव मुझे भूल गये-

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी।

पावा राजकोश पुर नारी।

राज पाकर अवध के राजा को भूल गये, कोश पाकर कोसलेश को भूल गये पुर पाकर पुरुषोत्तम को भूल गये। नारीपाकर नारायण को भूल गये। भगवान राम महाविष्णु हैं इसमें किसी को सन्देह नहीं रहना चाहिए। रामतापनीयोपनिषद् में कहा गया है-
चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।
रघोः कुलऽखिलं राति राजते यो महींश्रितः॥

भगवान महाविष्णु हैं। विष्णु और महाविष्णु में अन्तर होता है। महाविष्णु सबके आराध्य हैं चाहे रामानन्दी हों चाहे रामानुजी। विष्णु सत्त्वगुणावच्छिन्न हैं महाविष्णु गुणानवच्छिन्न हैं। इसलिए 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः' का यहाँ क्या अर्थ है? वैष्णव तेज में भगवान प्रविष्ट नहीं होते वैष्णव तेज स्वयं उनका है ही वे अपने में कैसे प्रविष्ट होंगे? नह्यति चतुरोऽपि स्वस्कन्धभारोदुं प्रभवति' अत्यधिक चतुर भी क्या कभी अपने कन्धे पर चढ़ सकता है। इसलिए महर्षि वाल्मीकि ने बार-बार बहुत स्थलों में अन्तरभावितण्यर्थ का प्रयोग किया है। जैसे कहीं 'गच्छति' का प्रयोग किया है तो वहाँ अर्थ होगा 'गमयति' अर्थात् धातु रहेगी शुद्ध, पर उसका अर्थ ण्यन्तपरक होगा। इसी प्रकार 'सशरीरः सहानुजः' अर्थात् शरीर भगवान का ज्यों का त्यों है, लक्षणादि सब ज्यों के त्यों हैं फिर 'वैष्णवं तेजः विवेश' का क्या अर्थ होगा? अर्थ होगा 'वैष्णवं तेजः वेशयामास' अपने में वैष्णव तेज का प्रवेश करवा लिया। सारे देवता भगवान श्रीराम में विलीन होकर परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म बन जाते हैं। तभी तो गीता जी में कहा है- तेजस्तेजस्विनामहम्। अब भगवान राम चिन्तित हैं कि सुग्रीव मुझे कैसे भूल गये? लक्ष्मण जी ने कहा मैं गुरु हूँ दण्ड दूँगा।

तमात्तबाणासनमुत्पतन्तं

निवेदितार्थं रणचण्डकोपम्।

उवाच रामः परवीरहन्ता

स्ववीक्षितं सानुनयं च वाक्यम्॥

यों कहकर धनुष बाण हाथ में लेकर लक्ष्मण चल पड़े। श्रीराम ने कहा ऐसा मत करो। सुग्रीव को साम, दान, भय और भेद से ले आओ-

तब अनुजहिं समुझायेउ रघुपति करुना सींव।

भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।।

हनुमन्तलाल ने जाकर सुग्रीव को समझाया कि आप ठीक नहीं कर रहे हैं। राम जी ने आपका कार्य कर दिया आप उनको पहचानने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। आपने उनके फलाहार की भी चिन्ता नहीं की। चार महीने में। शीघ्रता कीजिए अभी लक्ष्मण जी आने वाले हैं। हनुमान जी महाराज को 'रामायण महामालारत्नम्' कहा जाता है। हनुमान जी महाराज ने पाँच लोगों की रक्षा की है। सुग्रीव के प्राणों की रक्षा, वानरों के प्राणों की रक्षा, मैथिली जी के प्राणों की रक्षा, लक्ष्मण जी के प्राणों की रक्षा और भरतलाल जी के प्राणों की रक्षा। सुग्रीव तो आज ही समाप्त हो जाते। भगवान राम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! सुग्रीव से जाकर कह देना कि मैं उसी बाण से सुग्रीव को मार सकता हूँ। लक्ष्मण जी को आते हुए देखकर सुग्रीव भयभीत हो जाते हैं। जीव का स्वभाव है कि वह लेते-लेते भूल जाता है और भगवान देते-देते भूल जाते हैं। हनुमान जी महाराज तारा को जाकर समझाते हैं-

सा पानयोगाच्च निवृत्तलज्जा

दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः।

उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं

वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम्।।

टीकाकारों ने यहाँ अर्थ का अनर्थ किया है। टीकाकारों ने तारा का शराब पीने का वर्णन किया है। तारा शराब क्यों पियेगी? इसका उचित अर्थ होगा- पानस्य योगः संयोगः अर्थात् आज तारा को ज्ञात हो

चुका है कि लक्ष्मण जी आयेंगे उनका चरणामृत धोकर मैं पान करूँगी। चरणामृत के पान का संयोग होने के कारण तारा ने आज अपनी शर्म छोड़ दी है यही अर्थ ग्राह्य है और यही वैष्णवजन सम्मत भी है। प्रत्येक वस्तु की व्याख्या उचित दृष्टिकोण से होती है। वही उपयुक्त होती है। प्रायशः गृहस्थ कूटधर्मा गृहस्थ रहे हैं। बालकालीन साधुओं की एक अलग परम्परा होती है। जो विषयों को भोग कर आते हैं उनके लिए वासना को भूलना बहुत कठिन होता है जबकि बालकालीन हमारे जैसे साधुअपनी मस्ती में रहते हैं। कभी न कभी उसका प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। एक बार एक बहुत अच्छे सन्त बैठे थे एक व्यक्ति ने मंगलाचरण किया। तब हमने कहा कि मैं आपको घोषित करता हूँ कि यह व्यक्ति पहले गृहस्थ रहा होगा। इसकी वाणी बता रही है। लोगों ने कहा आपने कैसे जान लिया है जो बालकालीन साधु होता है वह ऐसी भाषा बोल ही नहीं सकता। एक उदाहरण से यह स्पष्ट करूँ। गोस्वामी जी दोनों व्यक्तियों का अनुवाद कर रहे हैं। अंगद का भी और हनुमान जी का भी। हनुमान जी बालकालीन विरक्त साधु हैं वे बोलते हैं-

बिनती करउँ जोरि कर रावन।

सुनहु मान तजि मोर सिखावन।।

देखहु तुम निज हृदय विचारी।

भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी।।

अंगद जी की वाणी सुनिये-

तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तब गाउँ।

मन्दोदरी समेत शठ जनकसुतहिं लै जाउँ।।

दोनों की वाणी में अन्तर पड़ेगा ही। इसको हम नकार ही नहीं सकते। ये विषय भोग इतने दुष्ट होते हैं कि इनका हमारी वाणी पर प्रभाव पड़ता ही है। इन विषय भोगों को भुलाना बहुत कठिन होता है। लक्ष्मण

जी ने सुग्रीव से कहा- सुग्रीव! तुम भूल गये। तभी तारा जी आ गई। महर्षि वाल्मीकि ने वर्णन किया है-

सा प्रस्खलन्ती मद विह्वलाक्षी
प्रलम्बकाञ्ची गुणहेमसूत्रा।
सलक्षणा लक्ष्मणसंनिधानं
जगाम तारा नमिताङ्गयष्टिः।

तारा ने लक्ष्मण जी को देखा उसके भाग्य जाग गये। जब व्यक्ति भगवत्प्रेम की तरंग में आता है वह स्खलित होने लगता है। जैसे-

शिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं।
बिहवल बचन प्रेमवश बोलहिं॥
करह मनोरथ जस जिय जाके।
जाहिं सनेह सुरा सब छाके॥

तारा जी के चरण ठीक नहीं पड़ रहे हैं। क्योंकि धातुओं में 'मदि हर्षसामोहयो' 'मदि' धातु के दोनों अर्थ होते हैं हर्ष भी और सम्मोह भी। हमारी व्याख्या गृहस्थ से भिन्न होगी उसमें गुणात्मक अन्तर होगा। यह आवश्यक नहीं कि जो अर्थ आप सोचते हैं वही अर्थ होगा क्योंकि 'अनेकार्था हि धातवः' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं। जैसे परि पूर्वक भू धातु का यदि अवज्ञान ही अर्थ होता तो केवल एक ही अर्थ लिया जाता। इसी प्रकार मद का अर्थ केवल शराब नहीं होता 'मदविह्वलाक्षी' अर्थात् आज लक्ष्मण जी के आगमन से तारा जी के मन में जितनी प्रसन्नता है उस प्रसन्नता से उनकी आँखें विह्वल हो रही हैं। आज साक्षात् जीवाचार्य (लक्ष्मण जी) हमारे पास आ रहे हैं। लक्ष्मण जी के पास तारा जी आईं। लक्ष्मण जी का क्रोध शांत हुआ। तारा शब्द सीताजी के ता और राम जी के रा से मिलकर बना है अर्थात् तारयतीति तारा। तारा ने कहा महाराज- मैं प्रसन्न हूँ यही अवध

की संस्कृति है जैसा आप आचरण कर रहे हैं। आपके भाई राघवेन्द्र सरकार और महाराज बालि मुझे आपके चरणों में सौंप गये हैं अतः आप मेरी रक्षा करें। तुम सुग्रीव को क्षमा कर दो। तारा ने कहा-

क्षमस्व तावत् परवीर हन्त
स्त्वद् भ्रातरं वानरवंशनाथम्।

विपक्षीवीरों का नाश करने वाले राजकुमार लक्ष्मण! इन्हें अपना भाई समझकर क्षमा कर दीजिए। जीव तो प्रमाद करता ही है आप तो ईश्वर हैं सर्वज्ञ हैं। दीनबन्धु! आप गुरु हैं। जीव पर इतना क्रुद्ध मत होइये। तब-

करि बिनती मन्दिर लै आये।
चरन पखारि पलंग बैठाए॥
तब कपीश चरननि सिर नावा।
गहि भुज लछिमन कण्ठ लगावा॥

सुग्रीव के पलंग पर ही लक्ष्मण जी को बैठाया और उनके चरण पखारे। जब सुग्रीव ने श्रीलक्ष्मण के चरणों में शिर झुकाया तो लक्ष्मण जी ने उन्हें उठाकर गले से लगाया। इन भागवतों के सम्बन्ध में तो अनुचित सोचना ही नहीं चाहिए। जिनके लिए गोस्वामी जी महाराज ने कहा है-

कपिपति ऋक्ष निशाचर राजा।
अंगदादि जे कीश समाजा॥
बन्दउँ सबके चरन सुहाए।
अधम शरीर राम जिन पाए॥

मैं इनके चरणों का तथा आचरण का भी वन्दन करता हूँ कि शरीर भले अधम रहा हो पर चरित्र इतने उत्तम रहे कि इनको भगवान श्रीरामजी प्राप्त हुए। सुग्रीव ने पूरी बात बताई और क्षमा माँगी और कहा श्रीरघुनाथ जी से मुझे क्षमा करा दीजिए। अभी सारे वानर आ रहे हैं। लक्ष्मण जी ने कहा- कोई बात नहीं

आप अब मुझे भी क्षमा कर दीजिए। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं-

स च सर्वान् समानीय वानरान् वानरर्षभः।
दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम्।।

सुग्रीव ने समस्त दिशाओं में सब वानरों को भेज दिया। दक्षिण दिशा में हनुमान जी को जाना है। सबको भेजने के पश्चात् सुग्रीव ने हनुमान जी से कहा- हनुमान जी! अब हमारी लाज आपके हाथ में है। भगवान श्रीराम जी-

तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम्।
कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः।।
ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्गोप शोभितम्।
अङ्गुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परन्तपः।।

अवध में जब किसी को बहुत प्रेम करते हैं तब हम लोग उकार लगाकर बोलते हैं जैसे- हनुमनऊ, बवऊ। भगवान श्रीराम धीरे से हनुमान जी को बुला रहे हैं-

पाछे पवनतनय सिर नावा।

जानि काज प्रभु निकट बुलावा।।

अपनी ही भाषा (अवधी) में हनुमान जी को निकट बुलाया-

अंजनी के बारे हो दुलारे पौन देवता के।
सुना बिरवा बीर हनुमान, तन हिन्नै आवा।
तुहड़ बचवा बाटड़ हमरी नाव के खिवैया हो।
बाबा बजरंगी बलवान, तन हिन्नै आवा।।
सुना बिटवा.....

कंचन बरन चमकै पियरी सरीरिया।
इन्द्रधनुष जैसन दमकै लरक लँगुरिया।
तोहड़ भइया हुइजा हमरी लाज के रखैया हो।

बाबा बजरंगी बलवान, तन हिन्नै आवा।।
सुना बिटवा.....

बिरह बिकल सीता दिन अरु रतिया।
दइके मुँदरिया जुड़ावा उनकी छतिया।
तोहड़ बिटवा बाटड़ हमरी नाव के खिवैया हो
अंजना तनय मतिमान, तन हिन्नै आवा।
सुना बिटवा.....

जानकी जियन का समाचार जो लियइबा
हमरा से मुँहमाँगाबरदान पड़बा
'गिरिधर' प्रभु तोहरे मन के बसइया हो
संकटमोचन हनुमान, तन हिन्नै आवा।
सुना बिटवा.....

बोलो वीर बजरंग बली की जय। हनुमान जी को धीरे से अपने बुलया और

परसा शीष सरोरुह पानी।
कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहिं समुझाएहु।
कहि बलबीर बेगि तुम आएहु।।

शिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। भगवान श्रीराम ने कहा-

अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनु द्विगनानुपश्यति।।

हे कपिश्रेष्ठ! इस चिह्न के द्वारा जनककिशोरी सीता जी को यह विश्वास हो जायगा कि तुम मेरे पास से ही गये हो। इससे वह भय त्यागकर तुमको देखेगी। महर्षि वाल्मीकि आगे कहते हैं कि भगवान् श्रीराम हनुमान जी को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि-

व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः।
सुग्रीवस्य च सन्देशः सिद्धिं कथयतीव मे।।

क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (८४)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

संगति- अब यहाँ अर्जुन प्रश्न करते हैं कि भगवान के अवतार से साधकों को क्या लाभ है? अर्जुन के इस प्रश्न पर भगवान कहते हैं-

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

४/९

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे अर्जुन! मेरे दिव्य जन्म एवं वेद विहित अलौकिक कर्म तथा नाम, रूप, लीला, धाम को जो इस प्रकार तत्वों से जानता है वह पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़कर फिर जन्म नहीं ग्रहण करता अथवा पुनर्जन्मात्मक संसार को नहीं प्राप्त होता वह तो मुझे ही प्राप्त कर लेता है।

व्याख्या- यहाँ 'च' शब्द से भगवान के नाम, रूप, लीला, धाम का संग्रह समझना चाहिए। 'दिव्य' का तात्पर्य है 'दिविभवं' अर्थात् ये सब साकेतलोक एवं गोलोक की घटनाओं के परिणाम स्वरूप ही हैं और इनमें साधुपरित्राण, दुष्टविनाश एवं धर्म स्थापना तीनों हेतु सम्बद्ध रहते हैं। मेरे जन्म-कर्म के ज्ञान से ही साधक के जन्म-मरण समाप्त हो जाते हैं। यदि दर्शनादि हो जायें तो क्या पूँछना?

बिन देखे ऐसी लगन लगी,
दर्शन होंगे तो क्या होगा?

वह मुझे ही प्राप्त करता है। अतः मेरे जन्म, कर्म, रूप, लीला, धाम के ज्ञान से साधक पुनर्जन्म की विडम्बना से मुक्त हो जाता है, यह उसका अपूर्व लाभ है॥श्री॥

संगति- पुनः अर्जुन प्रश्न करते हैं आपके जन्म-कर्म के चरित्रों को जानकर जीव कैसे मुक्त होता है? इस पर भगवान कहते हैं-

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भवमागताः॥

४/१०

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे अर्जुन! मेरे जन्म कर्म के रहस्यज्ञानरूप तप से पवित्र हुए तथा राग, भय, क्रोध से मुक्त हुए मुझमें तल्लीन हुए, बहुत से मेरे शरणागत भक्त मुझमें सेव्यसेवक भाग अथवा मेरी निकटता प्राप्त कर चुके हैं।

व्याख्या- हे अर्जुन! 'मेरी जन्म-कर्म लीलाओं का यही वैशिष्ट्य है कि मेरे जन्म के चिन्तन से साधक को मुझमें अनुराग हो जाता है। अतः वह सांसारिक राग छोड़ देता है। मेरे कर्म संकीर्तन से साधक मुझ ही से अभयदान प्राप्त करके संसार में निर्भय हो जाता है और मेरी लीला के गान से दिव्य बोध प्राप्त कर क्रोध रहित हो जाता है। इस प्रकार मेरे जन्म चिन्तन से राग, भय, क्रोध मुक्त होकर मेरे कर्मचिन्तन से मुझमें तन्मयता करके मेरे नामादि चतुष्टय चिन्तन से मेरे आश्रित हो जाता है। उप का तात्पर्य है साधक मुझे संसार से अधिक मानने लगता है। इस प्रकार बहुत से लोग मेरे जन्म-कर्म रहस्य ज्ञान तप से पवित्र हो चुके हैं। 'मद्भाव' मम भावः 'मद्भाव' वे मुझमें भाव अर्थात् शान्त वात्सल्य दास सख्य और मधुर इनमें से कोई एक भाव प्राप्त

कर चुके हैं। अथवा मेरे प्रति सेव्य सेवक भाव प्राप्त कर चुके हैं अथवा मुझमें भाव अर्थात् स्थिति प्राप्त कर चुके हैं॥श्री॥

संगति- अर्जुन फिर प्रश्न करते हैं कि जब भक्त आपके शरणागत होते हैं तब आप क्या करते हैं? इस पर भगवान कह रहे हैं-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

४/१९

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे पृथापुत्र अर्जुन! जो लोग मुझमें जिसप्रकार से प्रपन्न अर्थात् शरणागत होते हैं, मैं उन्हें उसीप्रकार स्वीकार कर लेता हूँ। सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुवर्तन करते हैं। अर्थात् जो जैसे व्यवहार करता है उसके साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं।

व्याख्या- यथा का तात्पर्य है शान्त, वात्सल्य, दास्य, सख्य और मधुर इन पाँचों में से जो जिस भाव से मेरी शरण में आता है मैं उसको उसी भाव से स्वीकार कर लेता हूँ। भाव का परिवर्तन नहीं करता। पार्थ शब्द का आशय है कि जैसे तुम पहले मेरे प्रति सख्य भाव रखते थे, तो मैंने उसी भाव से तुम्हें स्वीकारा और जब गुरु भाव से शरण में आये तब गीता का उपदेश कर रहा हूँ। सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं अर्थात् जैसे का तैसे करते हैं। इसीलिए तुम भी क्रूरकर्मा कौरवों के साथ क्रूरता से वर्तन करो, कोमल मत बनो, नहीं तो मेरे मार्ग से विरुद्ध हो जाओगे। यहाँ ध्यान रहे कि-

जो तो को कांटा बुवै ताहि बोउ तू फूल।

तो को फूल को फूल है वाको है तिरसूल।।

कबीर के इस चिन्तन को रघुवीर, अथवा

यदुवीर इन दोनों के सिद्धान्त के साथ देखिये- भगवान राम भी सागर निग्रह प्रसंग में स्पष्ट कहते हैं-

भय बिनु होइ न प्रीति।

और भगवान कृष्ण भी 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते' कहकर इसी बात का संकेत करते हैं और नीति भी यही कहती है- "शठे शाठ्यं समाचरेत्" अतः-

जो तो को कांटा बुवै ताहि बोउ तू फूल॥

यह चिन्तन कायरों का, वेद विरोधियों का और नपुंसकों का है। यहाँ भगवान् और वेद दोनों की एक ही आज्ञा है कि-

जो तो को कांटा बुवै ताहि बोउ तू भाला।
वो भी मूरख क्या समझे की पड़ा किसी से पाला॥

भगवान वेद भी यही कह रहे हैं- 'योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्वति वयं धूर्वाम' धूर्वि धातु का अर्थ हिंसा है। वेद कहते हैं कि जो हमें मारने आ रहा हो उसे हम मूल से उखाड़कर फेंक दें अर्थात् मार डालें। इसीलिए कौरवों के प्रति कोमल मत बनो, यही 'मम वर्त्मानुवर्तन्ते' का सारांश है॥श्री॥

संगति- पुनः अर्जुन प्रश्न करते हैं कि हे मदनमोहन! इस प्रकार आप जैसे सर्व सुहृद शरणागतवत्सल परमेश्वर प्राप्त करके भी लोग अन्य छोटे मोटे स्वार्थ परायण देवताओं की उपासना क्यों करते हैं? मानों यहाँ अर्जुन अपने लिए भी पश्चाताप कर रहे हों क्योंकि उन्होंने भी प्रभु को प्राप्त करके इन्द्र और शंकर की उपासना की। इस पर परम कारुणिक श्रीभगवान कहते हैं-

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥

४/१२

क्रमशः.....

गतांक से आगे-

शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य

□ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

शिखा ब्रह्मरन्ध्र की पताका

(१८) फलतः द्विजों की शिखा बल, वीर्य, स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक उन्नति के साधन होने के साथ ही साथ उत्तम जातीय-चिन्ह भी है। यह शिखा ब्रह्मरन्ध्र-स्थल की पताका है। इस शरीररूप किले के पाँच तट, सात गर्भगृह, साढ़े तीन लाख छोटी कोठियाँ तथा सात महल हैं। सातवें महल में सम्राटरूप ज्योतिः-स्वरूप परब्रह्म का निवास है। जैसे दुर्ग के राजनिवास स्थल में विशेषता के लिए पताका-ध्वजा-झण्डा आरोपित किया जाता है; वैसे ही इस शरीर-रूप दुर्ग में ब्रह्मरन्ध्र-स्थल में जहाँ ब्रह्म गुप्त रहता है; वहीं शिखारूप पताका भी रखी गई है। यह शिखा उस ब्रह्मरन्ध्र को सूचित करती है; इसीलिए सनातन धर्म के आचार्यों ने वहाँ शिखा रखवाकर गायत्री मन्त्र से सन्ध्या के समय शिखाबन्धन की प्रणाली प्रचलित की है। शिखाबन्धन से केवल बिखरे हुए बालों के समेटने में तात्पर्य नहीं; जैसे कि अर्वाचीन सम्प्रदाय के व्यक्ति कहते हैं; किन्तु अपनी चित्तवृत्ति को सन्ध्या-समय में ब्रह्मरन्ध्र के पास ब्रह्मध्यान के बन्धन में बद्ध करने में तात्पर्य है।

उक्त किले के पाँच तट हैं पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश। सात गर्भगृह हैं रोम, चर्म, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, शुक्र। साढ़े तीन लाख नाडियाँ ही छोटी कोठियाँ हैं। सात महल सात पद्म हैं। पहला चतुर्दल-पद्म आधारचक्र है। दूसरा षड्दल-पद्म मणिपूरनामक चक्र है। तीसरा दशदल-पद्म स्वाधिष्ठान-चक्र है। चौथा द्वादशदल-पद्म अनाहत-चक्र है। पांचवाँ षोडशदल-पद्म विशुद्ध नामक चक्र

है। छठा द्विदल-पद्म आज्ञाचक्र है, इस सन्धि-स्थान में ही अर्थात् त्रिकुटी महल में इतर नामक लिङ्ग है, जिसके द्वारा सहस्रदल-पद्म दिखलाई देता है। जिसकी कर्णिका में कोटि सूर्य के समान प्रभा वाला ब्रह्म रहता है। सातवाँ सहस्रदल पद्म है।

इस प्रकार वह ब्रह्मरन्ध्र-जिसके ऊपर शिखा है, उनमें सम्राट्-रूप ब्रह्म के निवास होने से उस पर पताकारूप शिखा का स्थापन भी आवश्यक सिद्ध हुआ। शिखा का मुख्य स्थापन धर्मरूप एवं कर्माङ्ग रूप से स्थापन द्विजों के लिए है, गौणता तथा चिह्नादि रूप से स्थापन हिन्दुजाति मात्र के लिए है। शिखा बांधकर कर्म करने से उसके निम्नस्थान में स्थित ब्रह्म के साथ सम्बन्ध होने से उस कर्म में मन की स्थिरता हो जाती है; इस स्थान की रक्षा भी हो जाती है। ग्रन्थि से बाह्य आघात से रक्षा अवश्य होती है। स्वा० दयानन्द जी ने भी अपनी 'पञ्चमहायज्ञविधि' (५ पृ० ११ पं०) में 'इसके अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बाँध के रक्षा करे' इससे शिखाबन्धन से रक्षा मानी है। बालों के इधर-उधर न फैलने के लिए ही शिखा-बन्धन मानना तो शुष्कतर्कमात्र है; इस भय से तो लोग शिखा को ही कटवा देंगे- 'न रही बाँस, न बजी बाँसुरी'। तब इस प्रकार के तर्क अश्रद्धा के ही बढ़ाने वाले होते हैं।

शिखा से दृष्ट-अदृष्ट में लाभ

(१९) इस प्रकार शिखा का अदृष्ट में जहाँ लाभ है; वहाँ वह हिन्दुत्व का चिह्न भी है; ३३ करोड़ की हिन्दु-धर्मशाला में प्रविष्ट हो चुके हुए का चिह्न है। उससे शारीरिक लाभ भी है, क्योंकि शरीर के सब

मर्मस्थानों का सम्राट् शिखास्थान में ही विराजमान है। वहाँ पर शीतोष्ण अत्यन्त शीघ्र प्राप्त हो जाता है। अधिकता से प्राप्त शीतोष्ण भीतरी स्नायु, मांस, रुधिर आदि में अपना प्रभाव पहुँचाकर हानि पहुँचा देते हैं। वहाँ पर पड़ा हुआ साधारण आघात भी हानि पहुँचाता है। वहाँ का शिखारूप केश संघात उस हानि से रक्षा करता है।

इसके अतिरिक्त 'ऊर्ध्वमूलं, अधःशाखा'। यह शरीर वृक्षरूप है। इसका मूल सिर है, शिखा के केश मूलशिफा (जड़ें) हैं। कन्धे के भाग से कमर तक का भाग शाखाएँ हैं, हाथ-पाँव आदि कर्मेन्द्रियाँ, नेत्र, श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ प्रशाखा हैं। भांति-भांति के विषय इसके पत्ते हैं, सुकर्म-कुर्म इसके फूल हैं, सुख-दुःख आदि इसके फल हैं। किसी वृक्ष की मूलशिफा (जड़ें) कभी काटी नहीं जातीं, क्योंकि उनके काटने से वृक्ष आरूढमूल नहीं होता। इसी कारण ही वृक्षारोपण के लिए एक स्थान से अन्य स्थान में ले जाने के समय जब पौधे को ले जाया जाता है; तब मूलशिफाओं के संरक्षणार्थ विशेष ध्यान दिया जाता है। फलतः वृक्ष के अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित, फलित होने के लिए जैसे उसकी मूलशिफाओं का काटना ठीक नहीं होता; वैसे ही शरीर-वृक्ष की रूढमूलता के लिए भी मूलशिफाभूत शिखा का रखना आवश्यक ही है, जिसके कारण हिन्दु जाति अनन्त शताब्दी-सहस्राब्दियों से लेकर आजतक भी जीवित है; शिखा के काटने-कटवाने वाली जातियाँ उत्पन्न होकर नष्ट हो गईं।

शिखा की गाँठ

(२०) शिखा में गायत्री मन्त्र द्वारा ग्रन्थि दी जाती है। वैसे सब जानते हैं कि- शिखा मस्तिष्क के

केन्द्र-बिन्दु पर स्थापित है। जैसे- रेडियों के ध्वनि विस्तारक केन्द्रों में ऊँचे खम्भे लगे होते हैं, वैसे ही हमारे मस्तिष्क का विद्युत भण्डार शिखास्थान पर है। इस केन्द्र में हमारे विचार, संकल्प और शक्ति-परमाणु प्रतिक्षण बाहर निकल-निकलकर आकाश में दौड़ते रहते हैं। इस प्रवाह से शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है और अपना मानसिक कोष घटता है। इसका प्रतिरोध करने के लिए शिखा में ग्रन्थि लगाई जाती है।

सदा ग्रन्थि लगाये रहने से अपनी मानसिक शक्तियों का बहुत सा अपव्यय बच जाता है। इस ग्रन्थि को सन्ध्या के समय से बांधा जाता है। उस समय अनेक सूक्ष्म तत्त्व आकर्षित होकर अपने अन्दर स्थित होते हैं। वे सब मस्तिष्क-केन्द्र से निकलकर बाहर न उठ जाएँ कि-कहीं अपनी साधना के लाभ से वंचित रहना पड़ जाय, इससे शिखा में गाँठ लगाई जाती है।

फुटबाल के भीतर के ब्लेडर में एक हवा भरने की नली होती है, उसमें गाँठ लगा देने से भीतर भरी हुई वायु बाहर नहीं निकलने पाती। साईकल के पहियों में भरी हुई वायु को रोकने के लिए एक छोटी वाल्ट्यूब नामक रबड़ की नली लगी होती है, जिसमें होकर हवा भीतर तो जा सकती है, पर बाहर नहीं आ सकती। गाँठ लगी हुई शिखा से भी यही प्रयोजन पूर्ण होता है। वह बाहर के विचार और शक्ति समूह को ग्रहण तो करती है, पर भीतर के तत्त्वों को अनावश्यक व्यय नहीं होने देती। आचमन से पूर्ण शिखाबन्धन इसलिए नहीं होता, क्योंकि उस समय त्रिविध शक्ति का आकर्षण किया जाता है, फिर उसे बांध दिया जाता है। यही शिखा ग्रन्थि का रहस्य है।

क्रमशः.....

(गतांक से आगे)

रासपञ्चाध्यायी विमर्श (३)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

भाग० १०/२९/१४

अर्थात् हे महाराज! भगवान् श्रीकृष्ण में छहों ऐश्वर्य विराजते हैं। उनमें सम्पूर्ण ईश्वरता, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री अर्थात् लक्ष्मी और शोभा, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्य ये छहों भगपदवाच्य गुण निरन्तर विरजमान रहते हैं। किसी भी समय किसी भी परिस्थिति में भगवान् की ईश्वरता समाप्त नहीं होती। किसी भी समय में भगवान् को यश नहीं छोड़ता। उन्हें मनुष्य जैसा अपयश कभी नहीं मिलता, किसी भी समय भगवान् शोभा से दूर नहीं होते और किसी भी समय भगवान् में अज्ञान नहीं आता और कभी भी भगवान् वैराग्य से विमुख नहीं होते। इसीलिए रासपञ्चाध्यायी का प्रारम्भ और रासपञ्चाध्यायी का विश्राम ये दोनों ही भगवान् शब्द से सम्पुटित हुये। प्रारम्भ और विश्राम में भगवान् शब्द का सम्पुट लगाकर ही रासपञ्चाध्यायी प्रस्तुत की गई अर्थात् उपक्रम और उपसंहार दोनों में ही भगवान् हैं और जैसे सम्पुट के दो पल्लों के बीच शालग्राम विराजते हैं, उसी प्रकार प्रारम्भ और विश्राम इन दोनों में भगवान् का सम्पुट लगाकर गोपियों के यश को शालग्राम की भाँति वेदव्यास जी ने प्रस्तुत किया है। यदि श्रीकृष्ण भगवान् हैं तो यहाँ व्यर्थ की शंका उठाना ही बहुत बड़ा अपराध है और व्यर्थ का प्रलाप करना ये केवल अपने समय को नष्ट कर देना है। तर्क होना चाहिए

परन्तु कुतर्क नहीं। इसलिए मनु ने कहा कि तर्क से धर्म का अनुसन्धान करो, परन्तु उसमें कुतर्क का कोई अवकाश नहीं है कोई अवसर नहीं है यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्म वेद नेतरः परन्तु आगे कह दिया कि तर्क को स्वच्छन्द नहीं होना चाहिए वेदशास्त्राविरोधीयस्तर्कश्चक्षुपरस्यताम् यः तर्क वेदशास्त्राविरोधी स एव अपस्यताम् चक्षु जो तर्क वेद और शास्त्र का अविरोधी हो जो वेद और शास्त्र के विरुद्ध न हो वही तर्क न देखनेवालों का नेत्र है। सामान्य सा सिद्धान्त है कि हरिद्वार में हरि की पैड़ी पर गंगा जी में स्नान करने की सभी को छूट है, करना चाहिए, परन्तु सिकरी पकड़कर। यदि सिकरी छूटी तो व्यक्ति गंगाजी में स्नान नहीं कर सकता वह तो बह जायेगा, समाप्त हो जायेगा। उसकी जीवनसरणी नष्ट हो जायेगी। वह कहीं का भी नहीं रहेगा। इसी प्रकार भारतीय संस्कृतिरूप गंगा में स्नान करते समय वेदरूप सिकड़ी को पकड़कर रखना चाहिए इसे कभी नहीं छोड़ना चाहिए इससे बहने का खतरा नहीं रह जायेगा बहने की समस्या नहीं रहेगी, आशंका नहीं रहेगी। अतएव हम जो कुछ भी सनातनधर्म के सम्बन्ध में विचार करेंगे वहाँ वेद की प्रामाणिकता को पहले स्वीकार करना पड़ेगा। वेद के विरुद्ध हम न तो कुछ कह सकते हैं और न सुन सकते हैं। हमें कुछ भी अभीष्ट नहीं होगा वेद के विरुद्ध। अतएव रासपञ्चाध्यायी का प्रारम्भ ही भगवान् से हुआ है “भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः” और इस

रासपंचाध्यायी का विश्राम भी भगवान् शब्द से हो रहा है “भक्तिं हरौ भगवति प्रतिलभ्य कामं” अर्थात् रासपंचाध्यायी के प्रारम्भ में भगवान् शब्द प्रथमा के एकवचन में आया है और इस रासपंचाध्यायी के विश्राम में भगवान् शब्द सप्तमी के एकवचन में आया है। इसका तात्पर्य यह है कि हमारे जीवन के भगवान् कर्ता भी हैं और हमारे जीवन के भगवान् आधार भी हैं। “आधारोऽधिकरम्” पा० अ० १/४/४५ आधार को अधिकरण कहा जाता है व्याकरण में अधिकरण तीन प्रकार का होता है “वैषयिक, अभिव्यापक और औपश्लेषिक”। इसका यही तात्पर्य है कि भगवान् हमारे जीवन में तीनों प्रकार के आधार हैं। भगवान् हमारे वैषयिक आधार भी हैं, भगवान् हमारे अभिव्यापक आधार भी हैं और भगवान् हमारे औपश्लेषिक आधार भी हैं। हम जहाँ भी रह रहे हैं भगवान् के आधार पर रह रहे हैं। वैषयिक, भगवान् के विषय में ही हम रह रहे हैं। भगवान् के समीप रह रहे हैं। भगवान् हमारे अभिव्याप हैं जैसे तिल में तेल, जैसे दूध में घी उसी प्रकार हमारे कण-कण में भगवान् हैं। वो अभिव्यापक हैं जीव व्याप्य है भगवान् व्यापक हैं। भगवान् औपश्लेषिक आधार भी है अर्थात् औपश्लेषिक का तात्पर्य चिपके रहना। भगवान् हमसे चिपके हुए हैं, हमसे सटे हुए हैं, हमसे जुड़े हुए हैं, भगवान् हमसे दूर कहाँ हैं। हम भगवान् में हैं और भगवान् हममें हैं। इसीलिए रासपंचाध्यायी के प्रथम श्लोक में भगवान् शब्द कर्तारूप में प्रकट हुआ। और प्रस्तुत हुआ विश्राम में सप्तमी के एकवचन के रूप में भगवति भगवान् भगवति। अतएव रासपंचाध्यायी का विचार करते समय इस सिद्धान्त को कभी नहीं छोड़ना चाहिए कि जब भगवान् में

छहों भग हैं तो ये अनीश्वरों की भाँति कैसे कार्य करेंगे? जब भगवान् का ऐश्वर्य कभी समाप्त ही नहीं होता तो भगवान् असमर्थ क्यों हो सकते हैं? क्योंकि कामी कभी समर्थ नहीं होता वो असमर्थ हो जाता है, इसीलिए गोस्वामी जी ने कहा कामियों के सम्बन्ध में कि “नारि विवश नर सकल गोसाईं। नाचइ नट मरकट की नाई।” जैसे नट वानर मदारी की इच्छा से नाचता है, उसी प्रकार सामान्य जीव काम की इच्छा से नाचता है। परन्तु भगवान् कभी वानर की भाँति नाचते नहीं हैं। एक आश्चर्य ही तो है, भगवान् वानरों की भाँति नाचते नहीं हैं प्रत्युत् भगवान् वानरों को नचाते हैं। जैसे रामावतार में भगवान् स्वयं वानरों के चरवाहे बने “भजे बिनु वानर के चरवाहें” हम कभी-कभी विनोद में कहा करते हैं कि-

गौओं को चराना खेल भी है,
किन्तु वानर को चराना खेल नहीं।
गिरिवर को उठाना खेल भी है,
किन्तु गिरिधर को उठाना खेल नहीं।

इसलिए भगवान् काम के अधीन कभी नहीं होते क्योंकि काम के अधीन होता है अनीश्वर। ईश्वर का अर्थ है जो सब पर शासन करे। वे ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त जीव पर शासन करते हैं। भगवान् कहते हैं-

“मद् भयाद् वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात्।
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात्।”

अर्थात् मेरे भय से वायु चलता है, मेरे भय से सूर्यनारायण नित्य तपते रहते हैं, मेरे भय से इन्द्र वर्षा करते हैं, मेरे भय से अग्नि में दाहकता रहती है। मेरे भय से मृत्यु भी इधर-उधर दौड़ता रहता है। इसलिए सबको भगवान् का डर है।

क्रमशः.....

प्यारे लगैं गुरुदेव

(पूज्यपाद जगद्गुरु जी की समर्चा में)

□ श्रीमती कमला शर्मा 'आशा'

प्यारे लगैं गुरुदेव हमें तो बड़े प्यारे लगें
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगें रे-२
गुरुवर के उपदेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें.....॥

मस्तक सुन्दर तिलक बिराजे-२
हाथ त्रिदण्ड अरु माला साजे-२
सुन्दर भगवा वेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें.....॥

चित्रकूट ही जिनको भाता-२
मन्दाकिनी मैया के स्नाता-२
जिनके विकलांग महेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें.....॥

वाणी में शारदा समाई-२
हृदय बिराजत सिय-रघुराई-२
हनुमत जो स्वयंमेव हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें.....॥

दिव्य-दिव्य जब चुटकी बजावें-२
वाद्य यंत्र सब फीके लागें- (बाजे गाजे भी सब

लाजें, ढोलक सारंगी शरमावें, तबला हरमुनिया
सकुचावें)
गाएँ जैसे शेष हमें तो बड़े प्यारे लगे रे-२
प्यारे लगें.....॥

गुरुदेव की महिमा भारी
गुरुगीता बरनी त्रिपुरारी
सप्तर्षिन हमें विशेष हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
तपस्वियों हमें विशेष हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें.....॥

ना जाऊँ मथुरा ना जाऊँ काशी
गुरुवर चार धाम सुखराशी
गुरु ब्रह्मा विष्णु महेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें.....॥

मंगल भवन अमंगल हारी
तुलसी मण्डल के उपकारी
मानस के संदेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें.....॥

'आशा' तृष्णा नहीं सतावें
गुरुदेव की शरण जो आवें
मिट जाएँ तन कलेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें बड़े न्यारे लगें रे
गुरुवर के उपदेश हमें तो बड़े प्यारे लगें रे
प्यारे लगें गुरुदेव हमें तो बड़े प्यारे लगें॥

□□□

सेवा का स्वरूप

□ प्रस्तुति- श्रीशेषधर जी शुक्ल (श्रीअयोध्या जी)

भगवान् का भक्त, जो भगवान् की सेवा को ही जीवन का स्वरूप बना लेता है, निरन्तर भगवत्सुखार्थ भगवान् की सेवा में संलग्न रहता है। ऐसे सेवापरायण सेवक का कैसा भाव-स्वभाव होता है, भक्तराज प्रह्लाद की निम्नलिखित पावन वाणी में उसके दर्शन कीजिये। भक्तवाञ्छा-कल्पतरु भगवान् श्रीनृसिंहदेव ने भक्तराज प्रह्लाद जी से जब वर माँगने को कहा तब प्रह्लाद जी अत्यन्त विनम्र शब्दों में भगवान् से कहते हैं- 'भगवन्! मैं तो जन्म से ही भोगासक्त हूँ, मुझे आप वरों का प्रलोभन मत दीजिये मैं तो भोगों के संग से डरकर उनके द्वारा होने वाली तीव्र वेदना का अनुभव कर उनसे छूटने की इच्छा से ही आपकी शरण में आया हूँ। जगद्गुरो! आप मेरी परीक्षा ही करते होंगे, नहीं तो दयामय! भोगों में फँसाने वाले वर की बात आप मुझसे कैसे कहते? परन्तु प्रभो- यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्॥ आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः॥ न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः॥ अहं त्वकामस्त्वद् भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः॥ नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव॥

(श्रीमद्भागवत ७/१०/४-६)

‘जो सेवक स्वामी से अपनी कामनाएँ पूर्ण करना चाहता है, वह चाकर-सेवक नहीं है; वह तो लेन-देन करने वाला बनिया है। जो स्वामी से कामनापूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं; और जो सेवक से सेवा कराने के लिये उसका स्वामी बनने के लिये उसकी कामना पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं। मैं कोई भी कामना न रखनेवाला आपका सेवक हूँ और आप मुझसे कुछ भी अपेक्षा न रखने वाले स्वामी हैं। हम लोगों का यह सम्बन्ध राजा और उसके सेवकों का प्रयोजनवश रहने वाला स्वामी-सेवक का सम्बन्ध

नहीं है।’

ऐसा केवल सेवाव्रती सेवक किस प्रकार का त्यागी होता है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए कपिलदेव के रूप में भगवान् कहते हैं-

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।

दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।

येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते॥

(श्रीमद्भागवत ३/२९/१३-१४)

‘मेरे वे सेवक मेरी सेवा को छोड़कर दिये जाने पर भी सालोक्य (भगवान् के धाम में नित्य निवास), सार्ष्टि (भगवान् के समान ऐश्वर्यप्राप्ति), सामीप्य (भगवान् की नित्य समीपता), सारूप्य (भगवान् के जैसे दिव्य रूप-सौन्दर्य की प्राप्ति) और एकत्व (भगवान् के साथ मिल जाना- उसके साथ एक हो जाना या ब्रह्मरूप को प्राप्त होना)- इन पाँचों मुक्तियों को ग्रहण नहीं करते। यह भक्तियोग ही साध्य है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लाँघकर मेरे भाव को, दिव्य विशुद्ध भगवत्प्रेम को प्राप्त होता है।’

इन भगवान् की सेवा किनमें कैसे करनी चाहिये? अवश्य ही अपने इष्ट भगवान् के मङ्गलविग्रह स्वरूप (प्रतिमा)-की पूजा करना भी बड़ा श्रेयस्कर है, पर उतना ही पर्याप्त नहीं है। भगवान् आगे चलकर कहते हैं-

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।

तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।

हित्वार्चा भजते मौढ्याद् भस्मन्येव जुहोति सः॥

(श्रीमद्भागवत ३/२९/२१-२२)

‘मैं आत्मा रूप से सदा सभी जीवों में स्थित हूँ; इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्मा का

अनादर करके केवल प्रतिमा में ही मेरा पूजन करते हैं, वे पूजन विडम्बनामात्र हैं। मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी जीवों में स्थित हूँ; ऐसी स्थिति में जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमा के पूजन में ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्म में ही आहुति डालता है।'

इसीलिये चराचर प्राणीमात्र में भगवान् को देखकर उनकी सेवा करनी चाहिये।

‘मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।’

यह भगवत्सेवा ही वास्तविक सेवा है। यही सबसे ऊँची प्रेमभृत्यता है। भगवान् इस प्रेम सेवा के दिव्य मधुर रस का आस्वादन करने के लिये नित्य निष्काम तथा नित्य तृप्त होने पर भी सकाम और अतृप्त हो जाते हैं। इसी दिव्य परम सेवा का उपदेश महात्माओं के पुण्य जीवन से प्राप्त होता है।

रुचि-वैचित्र्य, तम-रज-सत्त्व गुण तथा मनुष्य की मानस स्थिति के अनुसार सेवा के निकृष्ट-उत्कृष्ट बहुत-से रूप लोक में प्रचलित हैं; जैसे-

सेवा करना नहीं, पर सेवक कहलाना, सेवक के रूप में अपने को व्यक्त करना। यह दम्भ, पाखण्ड और पाप है।

किसी बड़े स्वार्थसाधन के उद्देश्य से ही या बड़ा बदला पाने के लिये ही किसी की कुछ सेवा करना; जैसे- अधिकारियों की सेवा, व्यक्तिगत रूप में मन्त्रियों आदि की सेवा, इसी लक्ष्य से संस्थाओं को तथा राजनीतिक पार्टियों को दान आदि देना, चुनाव में सहायता करना। चुनाव में जीतने या वोट पाने के लिये कहीं कुछ जनसेवा करके उसका विज्ञापन करना आदि। यह वास्तव में न सेवा है, न दान। यह एक प्रकार से थोड़ी पूँजी लगाकर बड़ा लाभ प्राप्त करने का व्यवसाय या जूआ है।

अपने को उपकार करने वाला मानकर सेवा का अभिमान करके सेव्य को अपने से नीचा मानना, उस पर अहसान करना, उसके द्वारा कृतज्ञता तथा प्रत्युपकार प्राप्त करने का अपने को अधिकारी

समझना और न मिलने पर उसे कृतघ्न मानना यह भी शुद्ध सेवा नहीं है, व्यापार ही है।

सेव्य के सुख-हित या उसके मन के प्रतिकूल अपने इच्छानुसार बर्ताव करके उसको सेवा के नाम से सेव्य पर लादना-यह भी सेवा की विडम्बना ही है।

सेवा करने की शुद्ध इच्छा से अपने को प्राप्त तन-मन-धन के द्वारा यथायोग्य सेव्य की आवश्यक-तानुसार सेवा करके प्रसन्नता या आत्मसंतोष प्राप्त करना-यह अच्छी सेवा है।

श्रद्धापूत हृदय से सेव्य के सुख-हित के लिये अपनी इच्छा के विपरीत भी उसके मनोऽनुकूल सेवा करना तथा उसको सुखी देखकर परम सुखी होना-यह भी सराहनीय सेवा है।

अपनी प्राप्त वस्तुओं के द्वारा किसी अभावग्रस्त की मूक सेवा करना, जिससे उसको यह पता भी न लगे कि यह सेवा कौन कर रहा है। कुछ वर्षों पूर्व एक अभावग्रस्त सम्भ्रान्त सज्जन ने बताया था कि उनके पास घर-खर्च के लिये वर्षों से प्रतिमास विभिन्न नाम तथा स्थानों से अमुक रकम मनीऑर्डर से नियमित आती है, पर बहुत खोजन पर भी भेजने वाले का पता नहीं लगा। शबरी जी इसी भाँति छिपकर चोरी से ऋषियों के आश्रमों में प्रतिदिन झाड़ू लगाकर कुश-कण्टक दूर किया करती थीं। इसमें ख्याति से भय रहता है और सेवक कहलाने में संकोच तथा लज्जा का बोध। यह श्रेष्ठ सेवा है।

जो सेवा सेवा के लिये ही होती है, सेवा किये बिना चैन नहीं पड़ता, रहा नहीं जाता, जो आत्मसंतोष के लिये ही सहजभाव से होती है, यह बहुत श्रेष्ठ सेवा है। चराचर प्राणिमात्र में एक आत्मा मानकर अपने आपकी सेवा की भाँति आवश्यकतानुसार जो सब प्रकार की सेवा होती है- यह श्रेष्ठ आत्मसेवा है। इसमें प्राणियों के सुख-दुःख की अपने में अनुभूति होती है। यह आत्मतत्त्वज्ञान की परिचायक उत्कृष्ट सेवा है।

जड़-चेतन जीवमात्र में भगवान् के स्वरूप का दर्शन कर, भगवद्बुद्धि से अपने प्रत्येक कर्म के द्वारा उनकी यथायोग्य सहज उत्साह-उल्लासपूर्ण सेवा होती है। उसके प्रत्येक कार्य से जगत् चराचर के रूप में अभिव्यक्त भगवान् प्रसन्न होते हैं। यह सेवा उत्कृष्ट भगवत्पूजा है।

जिस सेवा में सेवक के अहं के सुख-कल्याण की, स्वर्ग-मोक्ष की और दुःख-नरक की स्मृति का ही सर्वथा अभाव रहता है; अपने प्रत्येक विचार, कर्म, पदार्थ आदि के द्वारा प्रियतमरूप भगवान् को सुख पहुँचाना ही जिसका अनन्य स्वभाव होता है, उसके द्वारा जो स्वाभाविक चेष्टा होती है, वह भुक्ति-मुक्ति को नगण्य मानकर उनके महान् त्याग के परम पवित्र अनन्य मधुर धरातल पर होने के कारण-परम प्रेमरूप सर्वोत्कृष्ट परम सेवा है। इस सेवा की कहीं तुलना नहीं है।

मनुष्य को सेवा का यही लक्ष्य सामने रखकर यथायोग्य सेवा के पवित्र पथ पर अग्रसर होते रहना चाहिये। ऐसी सेवा करने वाले सेवक के पास आत्म-साक्षात्कार कैवल्य मोक्षरूप सिद्धि तो स्वयमेव आती है और उसी स्वीकार करने के लिये अनुनय-विनय करती है, उसे नित्यमुक्तस्वरूप भगवान् को वश में करके उन्हें निरन्तर बाँधकर रखने वाला प्रेम प्राप्त होता है, जो मानव-जीवन के लिये साधन तथा साध्य दोनों है। निष्काम-कर्मरूप सेवा, भक्ति-साधनरूप सेवा, आत्मज्ञानरूप सेवा के साथ ही इस परम प्रेमरूप सेवा का आदर्श ग्रहण करके जीवन को धन्य बनाना चाहिये-

‘साधन सिद्धि राम पग नेहू।’

काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से कहते हैं-

सब कर मत खगनायक एहा।

करिअ राम पद पंकज नेहा। □□□

माँ के उपदेश का महत्व

□ श्रीशिवकुमार गोयल

गोपीचन्द प्रसिद्ध राजा थे। संतों के सत्संग तथा संसार की माया की निस्सारता देखकर उनके मन में वैराग्य की भावना पैदा हो गई। वे अपनी माँ के पास पहुँचे। बोले- ‘मातुश्री- मैं राजपाट त्यागकर संन्यासी बनना चाहता हूँ। आपकी आज्ञा मांगने आया हूँ।’

माँ स्वयं अध्ययनशील तथा ज्ञानवती थी। वे बोलीं- ‘बेटा संन्यासी बनना हंसी खेल नहीं है। इन्द्रियों पर संयम रखने का अभ्यास किए बिना संन्यास-धर्म निभाना असंभव है। संयम ही संन्यासी का प्रमुख गुण होता है। अतः तू महल में रहकर कुछ अवधि तक संयम पालन की साधन कर। मन व इन्द्रियों पर संयम का अभ्यास होते ही संन्यास ले लेना।’

राजा गोपीचन्द ने संयम की साधना की। अभ्यास में उन्हें संयमी बना दिया। माँ का आशीर्वाद लेकर वे संन्यासी बनकर घर से निकल पड़े।

वर्षों तक तीर्थयात्रा करने, वृद्ध संत-महात्माओं का सत्संग करने के बाद एक दिन अचानक वे अपने महल के बाहर पहुँचे। हाथ में भिक्षापात्र था। भिक्षा देने की आवाज लगाई। माँ ने आवाज पहचान ली। भागी-भागी द्वार पर पहुँची। उसने चावल के तीन दाने भिक्षापात्र में डाल दिए और उपदेश देते हुए वह बोली- ‘चावल के तीन दाने तीन उपदेशों के प्रतीक हैं। पहला उपदेश है जैसे पहले राजमहल में सुरक्षित रहता था- वैसे ही रहना। जिस प्रकार मेरे भोजन के बाद भोजन करता था- वृद्ध संतों के बाद भोजन करना और तीसरा है जैसे महल में निश्चिन्तता से सोता था वैसे ही जंगल में भी गहरी नींद सोना।’

गोपीचन्द माँ की अनूठी भिक्षा (उपदेश) ग्रहण कर गद्गद हो उठे। □□□

भोगी और योगी का जीवन

भोगी देहाभिमानी होता है, योगी चिन्मात्रस्वरूप आत्माभिमानी होता है। भोगी कामी होने के कारण असत् संसार-प्रपञ्च का उपासक होता है और योगी त्यागी होने के कारण सत्स्वरूप परमात्मा का उपासक होता है। इसलिये भोगी पर जगत्-प्रपञ्च का प्रभाव पड़ता है। योगी पर निष्प्रपञ्च सत्याधार का प्रभाव पड़ता है। भोगी जगत्-प्रपञ्च में बँधकर सुख के पीछे दुःख एवं अशान्ति से घिरा रहता है और योगी सत्याधार का आश्रय लेकर शाश्वती शान्ति तथा शक्ति प्राप्त करता है।

भोगी स्वार्थी होता है और योगी परमार्थी होता है। भोगी अतृप्त और निर्बल होता है, योगी तृप्त और सबल होता है इसलिये भोगी संसार के पथ में सदा नीचे देखते हुए पतित होता है और योगी परमार्थ के पथ में सदा ऊपर देखते हुए उत्थान को प्राप्त होता है।

भोगी की विषयसुखानुभूति अपने से बहार पर-पदार्थों के संयोग पर निर्भर है और योगी का आनन्दानुभव अपने-आप में ही सत्यात्मा के योग पर निर्भर है। भोगी विषय-सुखों के भोग के लिये परतन्त्र है और योगी योगानन्द के लिये सदा स्वतन्त्र है। भोगी में भोगों के द्वारा शक्ति का अपव्यय होता है और योगी में योग के द्वारा शक्ति का संचय होता है। भोगी के समस्त साधन, संयम, तप आदि सीमित अहं के लिये होते हैं और योगी के समस्त साधन, संयम, तप आदि अपने परम प्रेमास्पद परमात्मा के लिये होते हैं। भोगी संसार का संयोगी होता है, किंतु योगी संसार का वियोगी होता है। संसार के संयोग से भोगों की सिद्धि होती है, संसार के वियोग से योग की सिद्धि होती है। जो अज्ञानी, अविवेकी है वही भोगी होता है; जो ज्ञानी, विवेकी है। वही योगी होता है।

भोग का पथ राग है जो अन्धकार में होकर जाता है और संसार की अतल गहराई में उतार देता

है, योग का पथ त्याग है जो प्रकाश में होकर जाता है और परमोत्कृष्ट सत्य की असीम महानता में पहुँचा देता है।

जिन योगाभ्यासियों के मन में किसी प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्य-सुख भोगों की कामना होती है, उनका योगाभ्यास शक्ति-प्राप्ति के लिये होता है। परंतु जिन लोगों में सांसारिक सुख-भोग की कामना नहीं रहती, जो तृप्त एवं विरक्त रहते हैं, उनका योगाभ्यास शक्तिमान् की प्राप्ति के लिये होता है। इसके अतिरिक्त जो साधक विरक्त होने के साथ सूक्ष्म बुद्धिवाले, तत्त्वान्वेषक हैं, उनका योग शान्ति-प्राप्ति के लिये होता है। जो साधक सांसारिक सुखों के कामी हैं, वे योगाभ्यास से शक्ति प्राप्त करने पर योगी बनते हैं। ऐसे व्यक्तियों में योगाभ्यास से शक्ति का जो कुछ विकास होता है, भोगाभ्यास से उतना ही शक्ति का हास होता है। जो साधक सांसारिक सुख-भोगों से विरक्त हैं और परमाधार प्रभु के अनुरक्त हैं, वे योगाभ्यास से प्राप्त शक्ति के भोगी न बनकर उस शक्ति से असहायों की सेवा करते हुए शक्तिमान् के योगी बनते हैं। जो यथार्थ विवेकी पुरुष शक्तिमान् के स्वरूप को तत्त्वतः जान लेते हैं, वे अपने योगाभ्यास के द्वारा अपने-आप में ही परमाधार सत्ता का नित्य अभेदानुभव करते हुए परम शान्ति को प्राप्त होते हैं। मनुष्य का जितना अधिक जीवन सांसारिक सुखों को भोगते हुए व्यतीत होता है, उतना ही उसमें विषय-सुखों की वासना प्रबल होती है और आगे चलकर उन वासनाओं से मुक्त होने में उतनी ही कठिनता उस भोगी मनुष्य को होती है; क्योंकि विविध भोग-सुखों के त्याग करने पर भी उनके संस्कारों की गन्ध उसी प्रकार आया करती है, जिस प्रकार तेल के पात्र से तेल निकाल देने पर भी तेल की गन्ध आती रहती है। भोगी बन्धन में रहता है, योगी मुक्त होता है।

□ कल्याण से साभार

भगवान् आज ही मिल सकते हैं

□ परमवीतराग सन्त श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदास जी महाराज

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। इतना सुगम दूसरा कोई काम नहीं है। परंतु केवल परमात्मा की चाहना रहे, साथ में दूसरी कोई भी चाहना न रहे। कारण कि परमात्मा के समान दूसरा कोई है ही नहीं। जैसे परमात्मा अनन्य हैं, ऐसे ही उनकी चाहना भी अनन्य होनी चाहिये। सांसारिक भोगों के प्राप्त होने में तीन बातें होनी जरूरी हैं- इच्छा, उद्योग और प्रारब्ध। पहले तो सांसारिक वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा होनी चाहिये, फिर उसकी प्राप्ति के लिये कर्म करना चाहिये। कर्म करने पर भी उसकी प्राप्ति तब होगी, जब उसके मिलने का प्रारब्ध होगा। अगर प्रारब्ध नहीं होगा तो इच्छा रखते हुए और उद्योग करते हुए भी वस्तु नहीं मिलेगी। इसलिये उद्योग तो करते हैं लाभ प्राप्ति के लिये, पर लग जाता है घाटा! परंतु परमात्मा की प्राप्ति इच्छा मात्र से होती है। उसमें उद्योग और प्रारब्ध की जरूरत नहीं है। परमात्मा के मार्ग में घाटा कभी होता ही नहीं, लाभ-ही-लाभ होता है।

एक परमात्मा के सिवाय कोई भी चीज इच्छा मात्र से नहीं मिलती। कारण यह है कि मनुष्य शरीर परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही मिला है। अपनी प्राप्ति का उद्देश्य रखकर ही भगवान् ने हमारे को मनुष्य शरीर दिया है। दूसरी बात, परमात्मा सब जगह हैं। सुई की तीखी नोक टिक जाय, इतनी जगह भी भगवान् से खाली नहीं है। अतः उनकी प्राप्ति में उद्योग और प्रारब्ध का काम ही नहीं है। कर्मों से वह चीज मिलती है, जो नाशवान् होती है। अविनाशी परमात्मा कर्मों से नहीं मिलते। उनकी प्राप्ति उत्कट इच्छा मात्र से होती है।

पुरुष हो या स्त्री हो, साधु हो या गृहस्थ हो,

पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो, बालक हो या जवान हो, कैसा ही क्यों न हो, वह इच्छा मात्र से परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। परमात्मा के सिवाय न जीने की चाहना हो, न मरने की चाहना हो, न भोगों की चाहना हो, न संग्रह की चाहना हो। वस्तुओं की चाहना न होने से वस्तुओं का अभाव नहीं हो जायगा। जो हमारे प्रारब्ध में लिखा है, वह हमारे को मिलेगा ही। जो चीज हमारे भाग्य में लिखी है, उसको दूसरा नहीं ले सकता- 'यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्'। हमारे को आने वाला बुखार दूसरे को कैसे आयेगा? ऐसे ही हमारे प्रारब्ध में धन लिखा है जो जरूर आयेगा। परंतु परमात्मा की प्राप्ति में प्रारब्ध नहीं है।

परमात्मा किसी मूल्य के बदले नहीं मिलते। मूल्य से वही वस्तु मिलती है, जो मूल्य से छोटी होती है। बाजार में किसी वस्तु के जितने रुपये लगते हैं, वह वस्तु उतने रुपयों की नहीं होती। हमारे पास ऐसी कोई वस्तु (क्रिया और पदार्थ) है ही नहीं, जिससे परमात्मा को प्राप्त किया जा सके। वह परमात्मा अद्वितीय है, सदैव है, समर्थ है, सब समय में है और सब जगह है। वह हमारा है और हमारे में है- 'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः' (गीता १५/१५), 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' (गीता १८/६१)। वह हमारे से दूर नहीं है। हम चौरासी लाख योनियों में चले जायँ तो भी भगवान् हमारे हृदय में रहेंगे। स्वर्ग या नरक में चले जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। पशु-पक्षी या वृक्ष आदि बन जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। देवता बन जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त बन जायँ तो भी वे हमारे हृदय में रहेंगे। दुष्ट-से-दुष्ट, पापी-से-पापी, अन्यायी-

से-अन्यायी बन जायँ तो भी वे भगवान् हमारे हृदय में रहेंगे। ऐसे सबके हृदय में रहने वाले भगवान् की प्राप्ति क्या कठिन होगी? पर जीने की इच्छा, मान की इच्छा, बड़ाई की इच्छा, सुख की इच्छा, भोग की इच्छा आदि दूसरी इच्छाएँ साथ में रहते हुए भगवान् नहीं मिलते। कारण कि भगवान् के समान तो भगवान् ही हैं। उनके समान दूसरा कोई था ही नहीं, है ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं, फिर वे कैसे मिलेंगे? केवल भगवान् की चाहना होने से ही वे मिलेंगे। अविनाशी भगवान् के सामने नाशवान् की क्या कीमत है? क्या नाशवान् क्रिया और पदार्थ के द्वारा वे मिल सकते हैं? नहीं मिल सकते। जब साधक भगवान् से मिले बिना नहीं रह सकते, तब भगवान् भी उससे मिले बिना नहीं रहते, क्योंकि भगवान् का स्वभाव है- 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (गीता ४/११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।'

मान लें कि कोई मच्छर गरुड जी से मिलना चाहे और गरुड जी भी उससे मिलना चाहें तो पहले मच्छर गरुड जी के पास पहुँचेगा या गरुड जी मच्छर के पास पहुँचेंगे? गरुडजी से मिलने में मच्छर की ताकत काम नहीं करेगी। इसमें तो गरुड जी की ताकत ही काम करेगी। इसी तरह परमात्म प्राप्ति की इच्छा हो तो परमात्मा की ताकत ही काम करेगी। इसमें हमारी ताकत, हमारे कर्म, हमारा प्रारब्ध काम नहीं करेगा, प्रत्युत हमारी चाहना ही काम करेगी। हमारी चाहना के बिना और किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।

हम तो भगवान् के पास नहीं पहुँच सकते तो क्या भगवान् भी हमारे पास नहीं पहुँच सकते? हम कितना ही जोर लगायें, पर भगवान् के पास नहीं पहुँच सकते। परन्तु भगवान् तो हमारे हृदय में ही

विराजमान हैं! हम भगवान् को दूर मानते हैं, इसलिये भगवान् हमसे दूर होते हैं। द्रौपदी ने भगवान् को 'गोविन्द द्वारकावासिन्' कहकर पुकारा तो भगवान् को द्वारका जाकर आना पड़ा। वह यहाँ कहती तो वे झट से यहीं प्रकट हो जाते! अगर हम ऐसा मानते हैं कि भगवान् अभी नहीं मिलेंगे तो वे नहीं मिलेंगे; क्योंकि हमने आड़ लगा दी।

गोरखपुर की एक घटना है। संवत् २००० से पहले की बात है। मैं गोरखपुर में व्याख्यान देता था। वहाँ सेवाराम जी नाम के एक सज्जन थे, जो बैंक में काम करते थे। एक दिन मैंने व्याख्यान में कह दिया कि अगर आपका दृढ़ विचार हो जाय कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! उन सज्जन को यह बात लग गयी। उन्होंने विचार कर लिया कि हमें तो आज ही भगवान् से मिलना है। वे पुष्पमाला, चन्दन आदि ले आये कि भगवान् आयेंगे तो उनको माला पहनाऊँगा, चन्दन चढ़ाऊँगा! वे कमरा बंद करके भगवान् के आने की प्रतीक्षा में बैठ गये। समय पर भगवान् के आने की सम्भावना भी हो गयी और सुगन्ध भी आने लगी, पर भगवान् प्रकट नहीं हुए। दूसरे दिन उन्होंने मेरे से कहा कि आज आप मेरे घर से भिक्षा लें। मैं कई घरों से भिक्षा लेकर पाता था। उस दिन उनके घर गया तो उन्होंने मेरे से पूछा कि भगवान् मिलने वाले थे, सुगन्ध भी आ गयी थी, फिर बाधा क्या लगी कि वे मिले नहीं? मैंने कहा कि भाई! मेरे को इसका क्या पता? परन्तु मैं तुम्हारे से पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे मन में यह बात आती थी कि इतनी जल्दी भगवान् कैसे मिलेंगे? वे बोले कि यह बात तो आती थी! मैंने कहा कि इसी बातने अटकाया! अगर मन में यह बात होती कि भगवान् मेरे को अवश्य मिलेंगे, उनको मिलना ही पड़ेगा तो वे जरूर मिलते। भगवान् ऐसे कैसे जल्दी मिलेंगे- ऐसा भाव करके तुमने ही बाधा लगायी है।

अगर आप विचार कर लें कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! परंतु मन में यह छाया नहीं आनी चाहिये कि इतनी जल्दी कैसे मिलेंगे? भगवान् आपके कर्मों से अटकते नहीं। अगर आपके दुष्कर्म से, पापकर्म से भगवान् अटक जायँ तो वे मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? परंतु भगवान् किसी कर्म से अटकते नहीं। ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं, जो भगवान् को मिलने से रोक दे। वे न तो पापकर्मों से अटकते हैं, न पुण्यकर्मों से अटकते हैं। वे सबके लिये सुलभ हैं। अगर भगवान् हमारे पापों से अटक जायँ तो हमारे पाप भगवान् से भी प्रबल हुए! अगर पाप प्रबल (बलवान्) हैं तो भगवान् मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? जो पापों से ही अटक जाय, उसके मिलने से क्या लाभ? परंतु भगवान् इतने निर्बल नहीं हैं, जो पापों से अटक जायँ। उनके समान बलवान् कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता ही नहीं। आपकी जोरदार इच्छा हो जाय तो आप कैसे ही हों, भगवान् तो मिलेंगे, मिलेंगे, मिलेंगे! उनको मिलना पड़ेगा, इसमें संदेह नहीं है। परमात्मा की प्राप्ति के लिये ही तो मानवजन्म मिला है, नहीं तो पशु में और मनुष्य में क्या अन्तर हुआ?

खादते मोदते नित्यं शुनकः शूकरः खरः।
तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी।।
सूकर कूकर ऊँट खर, बड़ पशुअनमें चार।
तुलसी हरि की भगति बिनु, ऐसे ही नर नार।।

देवता भोगयोनि है। वे भी चाहते हैं कि भगवान् हमारे को मिलें- 'देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः' (गीता ११/५२)। वे भगवान् को चाहते तो हैं, पर भोगों की इच्छा को नहीं छोड़ते। यही दशा मनुष्यों की है। अगर आप हृदय से भगवान् को चाहो तो उनका मिलना ही पड़ेगा, इसमें संदेह

नहीं है पर आप ही बाधा लगा दो कि भगवान् नहीं मिलेंगे, तो फिर वे नहीं मिलेंगे! गीता में साफ लिखा है-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्चछान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।

(गीता ९/३०-३१)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

'वह तत्काल (उसी क्षण) धर्मात्मा हो जाता है और निरन्तर रहने वाली शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीनन्दन! मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता- ऐसी तुम प्रतिज्ञा करो।'

तात्पर्य है कि दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी यदि 'अनन्यभाक्' हो जाय अर्थात् भगवान् के सिवाय कोई चाहना न रखे तो उसको भी साधु मान लेना चाहिये; क्योंकि उसने निश्चय पक्का कर लिया है कि भगवान् अवश्य मिलेंगे।

आप केवल भगवान् की ही इच्छा करो और कोई इच्छा मत करो। न जीने की इच्छा करो, न मरने की इच्छा करो। न मान की इच्छा करो, न बड़ाई की इच्छा करो। न भोगों की इच्छा करो, न रुपयों की इच्छा करो। केवल एक भगवान् की इच्छा करो तो वे मिल जायँगे। कम-से-कम मेरी बात की परीक्षा तो करके देखो! भगवान् आपको मिलते नहीं; क्योंकि आप उनको चाहते नहीं। आपके भीतर रुपयों की चाहना हो तो भगवान् बीच में कूदकर क्यों पड़ेंगे? संसार में सबसे रद्दी वस्तु रुपया है। रुपयों से रद्दी चीज दूसरी कोई है ही नहीं। ऐसी रद्दी चीज में आपका

मन अटका हुआ हो तो भगवान् कैसे मिलेंगे? रुपये देकर आप भोजन, वस्त्र, सवारी आदि खरीद सकते हो, पर रुपया स्वयं न तो खाने के काम आता है, न पहनने के काम आता है, न सवारी के काम आता है। तात्पर्य है कि रुपये काम नहीं आते, प्रत्युत उनका खर्च काम आता है।

परमात्मा इच्छामात्र से मिलते हैं। उनको रोकने की ताकत किसी में भी नहीं है। छोटा बालक रोता है तो माँ आ ही जाती है। बालक घर का कुछ भी काम नहीं करता, उल्टे काम करने में आपको बाधा लगाता है, पर जब वह रोने लगता है, तब सब घरवाले उसके पक्ष में हो जाते हैं। सास-ससुर, देवर-जेठ सभी कहते हैं कि बहू! बालक रो रहा है, उसको उठा ले। माँ को सब काम छोड़कर बालक को उठाना पड़ता है। बालक का एकमात्र बल रोना ही है- 'बालानां रोदनं बलम्'। रोने में बड़ी ताकत है। आप सच्चे हृदय से व्याकुल होकर भगवान् के लिये रोने लग जाओ तो जितने भगवान् के भक्त हुए हैं, सन्त-महात्मा हुए हैं, वे सब-के-सब आपके पक्ष में हो जायेंगे और भगवान् को उलाहना देंगे कि आप मिलते क्यों नहीं? वे ही भगवान् के सास-ससुर आदि हैं!

वास्तव में भगवान् मिले हुए ही हैं। आपकी सांसारिक इच्छा ही उनको रोक रही है। आप रुपयों की इच्छा करते हो, भोगों की इच्छा करते हो तो भगवान् उनको जबर्दस्ती नहीं छुड़ाते। अगर आप सांसारिक इच्छाएँ छोड़कर केवल भगवान् को ही चाहो तो आपको कौन रोक सकता है? आपको बाधा देने की किसी की ताकत नहीं है। अगर आप भगवान् के लिये व्याकुल हो जाओ तो भगवान् भी व्याकुल हो जायेंगे। आप संसार के लिये व्याकुल हो जाओ

तो संसार व्याकुल नहीं होगा। आप संसार के लिये रोओ तो संसार प्रसन्न नहीं होगा पर भगवान् के लिये रोओगे तो वे भी रो पड़ेंगे।

बालक सच्चा रोता है या झूठा, यह माँ ही समझती है। बालक के आँसू तो आये नहीं, केवल ऊँ-ऊँ करता है तो माँ समझ लेती है कि यह ठगई करता है! अगर बालक सच्चाई से रो पड़े, उसके साँस ऊँचे चढ़ जायँ तो माँ सब काम भूल जायगी और झट उसको उठा लेगी। यदि माँ उस बालक के पास न जाय तो उस माँ को मर जाना चाहिये! उसके जीने का क्या लाभ? ऐसे ही सच्चे हृदय से चाहने वाले को भगवान् न मिलें तो भगवान् को मर जाना चाहिये!

एक साधु थे। उनके पास एक आदमी आया और उसने पूछा कि भगवान् जल्दी कैसे मिलें? साधु ने कहा कि भगवान् उत्कट चाहना होने से मिलेंगे। उसने पूछा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? साधु ने कहा कि भगवान् के बिना रहा न जाय। वह आदमी ठीक समझा नहीं और बार-बार पूछता रहा कि उत्कट चाहना कैसी होती है? एक दिन साधु ने उस आदमी से कहा कि आज तुम मेरे साथ नदी में स्नान करने चलो। दोनों नदी पर गये और स्नान करने लगे। उस आदमी ने जैसे ही नदी में डुबकी लगायी, साधु ने उसका गला पकड़कर नीचे दबा दिया। वह आदमी थोड़ी देर नदी के भीतर छपपटाया, फिर साधु ने उसको छोड़ दिया। पानी से ऊपर आने पर वह बोला कि तुम साधु होकर ऐसा काम करते हो! मैं तो आज मर जाता! साधु ने पूछा कि बता, तेरे को क्या याद आया? माँ याद आयी, बाप याद आया, धन याद आया या स्त्री-पुत्र याद आये? वह बोला कि महाराज, मेरे तो प्राण निकले जा रहे थे, याद किसकी आती? साधु बोले तो तुम पूछते थे कि उत्कट अभिलाषा

कैसी होती है, उसी का नमूना मैंने तेरे को बताया है। जब एक भगवान् के सिवाय कोई भी याद नहीं आयेगा और उनकी प्राप्ति के बिना रह नहीं सकोगे, तब भगवान् मिल जायँगे। भगवान् की ताकत नहीं है कि मिले बिना रह जायँ।

भगवान् कर्मों से नहीं मिलते। कर्मों से मिलने वाली चीज नाशवान् होती है। कर्मों से धन, मान, आदर, सत्कार मिलता है। परमात्मा अविनाशी हैं। वे कर्मों का फल नहीं हैं, प्रत्युत आपकी चाहना का फल हैं। परंतु आपको परमात्मा के मिलने की परवाह ही नहीं है, फिर वे कैसे मिलेंगे? भगवान् मानो कहते हैं कि मेरे बिना तेरा काम चलता है तो मेरा भी तेरे बिना काम चलता है। मेरे बिना तेरे काम अटकता है तो मेरा काम भी तेरे बिना अटकता है। तू मेरे बिना नहीं रह सकता तो मैं भी तेरे बिना नहीं रह सकता।

आप में परमात्मा प्राप्ति की जोरदार इच्छा है ही नहीं। आप सत्संग करते हो तो लाभ जरूर होगा। जितना सत्संग करोगे, विचार करोगे, उतना लाभ होगा— इसमें संदेह नहीं है। परंतु परमात्मा की प्राप्ति जल्दी नहीं होगी। कई जन्म लग जायँगे, तब उनकी प्राप्ति होगी। अगर उनकी प्राप्ति की जोरदार इच्छा हो जाय तो भगवान् को आना ही पड़ेगा। वे तो हरदम मिलने के लिये तैयार हैं जो उनको चाहता है उसको वे नहीं मिलेंगे तो फिर किसको मिलेंगे? इसलिये 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहते हुए सच्चे हृदय से उनको पुकारो।

सच्चे हृदय से प्रार्थना, जब भक्त सच्चा गाय है। तो भक्तवत्सल कान में, वह पहुँच झट ही जाय है।।

भक्त सच्चे हृदय से प्रार्थना करता है तो भगवान् को आना ही पड़ता है। किसी की ताकत नहीं जो भगवान् को रोक दे। जिसके भीतर एक भगवान् के सिवाय अन्य कोई इच्छा नहीं है, न जीने की इच्छा

है, न मरने की इच्छा है, न मान की इच्छा है, न रुपयों की इच्छा है, न कुटुम्ब की इच्छा है, उसको भगवान् नहीं मिलेंगे तो क्या मिलेगा? आप पापी हैं या पुण्यात्मा हैं, पढ़े-लिखे हैं या अनपढ़ हैं, इस बात को भगवान् नहीं देखते। वे तो केवल आपके हृदय का भाव देखते हैं—

रहति न प्रभु चित चूक किए की।

करत सुरति शत बार हिए की।।

(मानस, बाल० २९।५)

वे हृदय की बात को याद रखते हैं, पहले किये पापों की याद रखते ही नहीं! भगवान् का अन्तःकरण ऐसा है, जिसमें आपके पाप छपते ही नहीं। केवल आपकी अनन्य लालसा छपती है। भगवान् कैसे मिलें? कैसे मिलें? ऐसी अनन्य लालसा हो जायेगी तो भगवान् जरूर मिलेंगे, इसमें संदेह नहीं है। आप और कोई इच्छा न करके, केवल भगवान् की इच्छा करके देखो कि वे मिलते हैं कि नहीं मिलते हैं। आप करके देखो तो मेरी भी परीक्षा हो जायेगी कि मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं। मैं तो गीता के बलपर कहता हूँ। गीता में भगवान् ने कहा है— 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (४।११) 'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।' हम भगवान् के बिना रोते हैं तो भगवान् भी हमारे बिना रोने लग जायँगे! भगवान् के समान सुलभ कोई है ही नहीं! भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

गीता ८।१४

'हे पृथानन्दन! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर

मुझमें लगे हुए योगी के लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभता से प्राप्त हो जाता हूँ।’

भगवान् ने अपने को तो सुलभ कहा है, पर महात्मा को दुर्लभ कहा है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७।१९)

‘बहुत जन्मों के अन्तिम जन्म में अर्थात् मनुष्य जन्म में ‘सब कुछ परमात्मा ही हैं’— इस प्रकार जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।’

हरि दुर्लभ नहीं जगत में, हरिजन दुर्लभ होय।
हरि हेर्याँ सब जग मिलै, हरिजन कहीं एक होय॥

भगवान् के भक्त तो सब जगह नहीं मिलते, पर भगवान् सब जगह मिलते हैं। भक्त जहाँ भी निश्चय कर लेता है, भगवान् वहीं प्रकट हो जाते हैं—
आदि अन्त जन अनंत के, सारे कारज सोय।
जेहि जिव उन नह्यो धरै, तेहि ढिग परगट होय॥

प्रह्लाद जी के लिये भगवान् खम्भे में से प्रकट हो गये—

प्रेम बढौं प्रह्लादहि को,

जिन पाहन में परमेश्वर काढे॥

(कवितावली ७।१२७)

भगवान् सबके परम सुहृद् हैं। वे पापी, दुराचारी को जल्दी मिलते हैं। माँ कमजोर बालक को जल्दी मिलती है। एक माँ के दो बेटे हैं। एक बेटा तो समय पर भोजन कर लेता है, फिर कुछ नहीं लेता और दूसरा बेटा दिनभर खाता रहता है। दोनों बेटे भोजन के लिये बैठ जायँ तो माँ पहले उसको रोटी देगी जो समयपर भोजन करता है; क्योंकि वह भूखा उठ जायगा तो शाम तक खायेगा नहीं। दूसरे बेटे को माँ कहती है कि तू ठहर जा; क्योंकि वह तो बकरी की

तरह दिनभर चरता रहता है। दोनों एक की माँ के बेटे हैं, फिर भी माँ पक्षपात करती है। इसी तरह जो एक भगवान् के सिवाय कुछ नहीं चाहता, उसको भगवान् सबसे पहले मिलते हैं; क्योंकि वह भगवान् को अधिक प्रिय है। वह एक भगवान् के सिवाय अन्य किसी को अपना नहीं मानता। वह भगवान् के लिये दुःखी होता है तो भगवान् से उसका दुःख सहा नहीं जाता।

कोई चार-पाँच वर्ष का बालक हो और उसका माँ से झगड़ा हो जाय तो माँ उसके सामने ढीली पड़ जाती है। संसार की लड़ाई में तो जिसमें अधिक बल होता है, वह जीत जाता है, पर प्रेम की लड़ाई में जिसमें प्रेम अधिक होता है वह हार जाता है। बेटा माँ से कहता है कि मैं तेरी गोदी में नहीं आऊँगा, पर माँ उसकी गरज करती है कि आ जा, आ जा बेटा! माँ में यह स्नेह, भगवान् से ही तो आया है। भगवान् भी भक्त की गरज करते हैं। भगवान् को जितनी गरज है, उतनी गरज संसार को नहीं है। माँ को जितनी गरज होती है, उतनी बालक को नहीं होती। बालक तो माँ को दूध पीते समय दाँतों से काट लेता है, पर माँ क्रोध नहीं करती। अगर वह क्रोध करे तो बालक जी सकता है क्या? माँ तो बालक पर कृपा ही करती है। ऐसे ही भगवान् हमारी अनन्त जन्मों की माता हैं। वे भक्त की उपेक्षा नहीं कर सकते। भक्त को वे अपना मुकुटमणि मानते हैं— ‘मैं तो हूँ भगतन को दास, भगत मेरे मुकुटमणि।’

भक्तों का काम करने के लिये भगवान् चौबीसों घण्टे तैयार रहते हैं। जैसे बच्चा माँ के बिना नहीं रह सकता और माँ बच्चे के बिना नहीं रह सकती, ऐसे ही भक्त भगवान् के बिना नहीं रह सकता और भगवान् भक्त के बिना नहीं रह सकते। □□□

श्रीहनुमज्जयन्ती पर विशेष-

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में श्रीहनुमच्चरित्र

□ श्री पं० बालकृष्ण कौशिक (सरदाशहर)

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में रामचरित्र को हृदयाह्लादिनी मणिमाला के रूप में काव्यगत श्रेष्ठताओं के साथ गुम्फित किया है। कथा के महानायक भगवान् राम के उदात्त चरित्र चित्रण में, जगज्जननी जानकी जी के चरित्र के साथ साथ लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव, हनुमान, आदि पात्रों का भी विस्तृत वर्णन उल्लेखनीय है। रामायण के अनेक पात्रों के चरित्रचित्रण में कविकोकिल वाल्मीकि ने हनुमच्चरित्रांकन में विशेष काव्य कौशल प्रदर्शित किया है। अद्वितीय व अनुपमेय रामायण महाकाव्य संस्कृत वाङ्मय का आदिकाव्य है। वर्तमान में वैदिक वाङ्मय एवं संस्कृत भाषा के उत्कृष्ट एवं अद्वितीय मनीषी जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज ने तो वाल्मीकि को सभी महाकवियों से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। वस्तुतः अनुष्टुप छन्द को आदिकवि ने रामायण का मुख्य छन्द बनाकर इसे जो महत्ता प्रदान की है, वह अतुल्य है। अस्तु,

इस आलेख का विषय रामायण में भी हनुमच्चरित्र पर कुछ विचार करना है। वाल्मीकि के हनुमान परम नीतिज्ञ, सुयोग्यसचिव, दूतकर्मकुशल, कार्यप्रयोजनलक्ष्याग्रवर्ती कुशलसंयोजक एवं नेतृत्वकर्ता, सेवकोचित विनम्रता के परमादर्श हैं। स्वामीभक्ति में हनुमान जी ने सुग्रीव एवं श्रीरामचन्द्र जी के प्रति जो प्रतिबद्धता दिखाई है, वह विलक्षण उदाहरण है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के प्रबल प्रतिमान, अनेक भाषाविद् एवं देववाणी संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। बाल्मीकि के हनुमान कालोचित निर्णय में अद्वितीय हैं। वे महाबलशाली, पराक्रमी योद्धा, एवं वानर

योद्धाओं में भी परमवीर, पूज्य, श्रेष्ठ, सम्मान्य योद्धा हैं। भगवान् राम-लक्ष्मण के वन आगमन से भयभीत सुग्रीव को वे निर्भय रहने हेतु आश्वस्त करते हैं। किष्किन्धाकाण्ड के द्वितीय सर्ग में सुग्रीव को समझाते हुए वे कहते हैं-

अहो शाखा मृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवङ्गम।
लघु चित्ततयात्मानं न स्थापयति यो मतौ।।
बुद्धिविज्ञानसम्पन्न इंगितैः सर्वमाचर।
नह्यबुद्धिं गतो राजा, सर्वभूतानि शास्ति हि।।

(२/१७-१८)

हनुमान जी नीतिवान् सचिव की तरह सुग्रीव को निर्भय करते हुए आश्वस्त करते हैं कि हे सुग्रीव! आप वानर बुद्धि छोड़कर धैर्यवान् बनें जिससे आप सभी प्राणियों को शासित कर सकें।

सुग्रीव के दूत के रूप में वे भिक्षुक विप्र का वेश बनाकर श्रीराम से मिलने जाते हैं, ताकि आगतजन से सरलता से परिचय प्राप्त कर सकें, क्योंकि विप्र वटुक पर सहसा कोई आक्रमण नहीं करता व उनका सर्वत्र निर्बाध आवागमन भी सुरक्षित रहता है। यहां वे दूत कौशल से रामलक्ष्मण की प्रशंसा करते हैं-

पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डल धारिणौ।
अन्योन्यसदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ।।
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविव गौवृषौ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमाः।।

(३/१२-१४)

कमल के समान नेत्र वाले, जटामुकुटधारी, अद्वितीय वीर युगल क्या देवलोक से आये हैं? सिंह

के समान कन्धे वाले महान उत्साहसम्पन्न, मदमस्त बैल के समान, विशाल सुन्दर गोल-गोल व परिध के समान आपकी भुजाएँ हैं।

विनम्रता का भाव तो उनके भिक्षुरूप से ही पता लगता है, वे प्रभु से मिलने के लिए विप्र भिक्षुक का रूप बनाते हैं, वस्तुतः हनुमानजी महान ही नहीं वे महतामादर्श हैं, स्वपरिचय में विनम्रता का भाव दृष्टव्य है।

“युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम्।।
भिक्षुरूपप्रतिच्छत्रं सुग्रीवप्रियकारणात्।
ऋष्यमूकादिह प्राप्तं कामगं कामचारिणम्।।

(३/२२-२३)

वे स्वयं को वानर बताते हुए, वायु का पुत्र व सुग्रीव का सचिव बताते हैं, एवं सुग्रीव से मित्रता के लिए निवेदन करते हैं।

हनुमान जी के वाक् चातुर्य व व्याकरण ज्ञान की प्रभुराम भी प्रशंसा करते हैं-

नानृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेद धारिणः।
ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्।।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्।।

(३/२८-२९)

श्रीरामलक्ष्मण से कहते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद का अध्ययन किये बिना व व्याकरण के स्वाध्याय बिना इतनी सुन्दर, शुद्ध भाषा में वार्तालाप सम्भव नहीं है।

सीतान्वेषण हेतु जब सुग्रीव अंगद, जाम्बवानादि वानर दल को दक्षिण दिशा में भेजते हैं, तब श्री रामद्वारा हनुमान जी को ही मुद्रिका दी जाती है, क्योंकि वे सुग्रीव के दूत के रूप में उनके नीतिज्ञान व निर्भीकता से सुपरिचित हो गए थे। वाल्मीकि जी यहां हनुमानजी

का बड़ा सुन्दर वर्णन करते हैं-

स तत् प्रकर्षन् हरिणां महद्बलं
बभूववीरः पवनात्मजः कपिः।
गताम्बुदे व्योम्नि विशुद्धमण्डलः
शशीव नक्षत्र गणोपशोभितः।।

(३/४४/१६)

मेघ रहित विशुद्ध नीलगगन में चन्द्रमा जैसे नक्षत्रमण्डल में शोभित होता है, उसी प्रकार वानर दल में हनुमान शोभित हो रहे हैं। इतना ही नहीं श्रीराम जी हनुमान के बल का आश्रय लेते हुए कहते हैं-
अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं हरिवर विक्रम विक्रमैरनल्पैः।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व।।

(३/४४/१७)

हे अत्यन्त बलशाली कपिश्रेष्ठ। मैंने तुम्हारे बल का आश्रय लिया है। पवनकुमार हनुमान जिस प्रकार भी जनकनन्दिनी सीताजी प्राप्त हो सकें तुम अपने महान बल से वैसा ही प्रयत्न करो।

निर्भयता हनुमान जी का परम वैशिष्ट्य है। सीतान्वेषण तत्पर अंगदनीत वानर दल के अन्य सदस्य नियत कालातीत होने पर जहाँ भयभीत व मृत्युन्मुखी हैं, वहाँ उसी दल में श्रीहनुमान समत्वबुद्धि धारण कर उत्साहसम्पन्न हैं। क्षुधापिपासार्त कपिदल में भी आगे-आगे निर्भीक महावीर हनुमान ही चलते हैं। स्वयंप्रभा की विशाल भयंकर गुफा में भी हनुमान प्रवेश कर विनम्र भाव से सबका संकट निवारण करते हैं।

शरणं त्वां प्रपन्नाः स्मः सर्वे वै धर्मचारिणीम्

यह गुफा इतनी बड़ी थी कि वानरों का अधिकांश सीतान्वेषण नियत समय इसी में घूमते घूमते बीत गया-

स तु कालो व्यतिक्रान्तो बिले च परिवर्तताम्

अंगद जी जब मन में कायरता लाकर अन्य वानरों को भी निरुत्साहित करते हैं तब हनुमानजी युवराज से परम नीति पूर्ण वार्ता कह कर उन्हें सीतान्वेषण हेतु पुनः तत्पर करते हुए कहते हैं—
त्वां नैते ह्यनुरंजयेयुः प्रत्यक्षं प्रवदामि ते।
यथायं जाम्बवान् नीलः सुहोत्रश्च महाकपिः॥
यां चेमां मन्यसे धात्रीमेतद् बिलमिति श्रुतम्।
एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत् कार्यं विदारणम्॥

(३/५४/१०-१३)

वे अंगद को समझाते हैं कि राम, लक्ष्मण व सुग्रीव विमुख तुम्हारे को जाम्बवान, नल, नील आदि सभी वानर छोड़ देंगे। वे भेद नीति का सहारा लेते हुए लक्ष्मण के प्रबल बाण की अंगद को याद दिलाते हैं। वे अग्निपुत्र नील, ब्रह्मापुत्र जाम्बवान, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ, मयन्द, द्विविद, हुतासन, गन्धमादन, उल्कामुख, अनंग एवं युवराज अंगद आदि सभी वानर वीरों का मार्गदर्शन करते हैं।

वाल्मीकि के हनुमान शास्त्रास्त्र से अवध्य हैं, जाम्बवान विस्तृत बल याद दिलाते हुए उनसे कहते हैं—

प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ।
अशस्त्रवद्यतां तात समरे सत्यविक्रम॥
हनुमान् हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि।
रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च॥
बलम बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव।
विशिष्टं सर्वभूतेषु क्रियात्मानं न सज्जसे॥

(३/६६-२७, ३, ७)

बल बुद्धि में सुग्रीव, राम, लक्ष्मण के तुल्य हनुमान जी को बताया है। वे वायुदेव द्वारा माता अंजनी को दिये वरदान को भी याद करते हैं कि

समुद्र लंघन में, हवा में उड़ने में तुम्हीं अपने पिता वायु के समान समर्थ हो—

महासत्वो महातेजा महाबल पराक्रमः।
लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः॥
उत्तिष्ठ हरि शार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम्।
परा हि सर्वभूतानां हनूमन् या गतिस्तव॥

(३/६६/१९, ३६)

जब आत्मविस्मृत बल को नीतिवान् जाम्बवान् हनुमान जी को स्मरण करवाते हैं, तब उनका उद्घोष वाल्मीकि के शब्दों में बड़ा ही उत्साहवर्द्धक है। वे कहते हैं कि मैं श्रीराम के बाण की तरह ही, श्वास की तरह निकले बाण के समान रावणपालित लंका में जाऊँगा व यदि वहाँ सीता को नहीं खोज पाया, तो स्वर्ग में पता लगाऊँगा, यदि त्रिलोकी में रावण द्वारा छुपायी गई सीता को नहीं खोज पाया तो रावण सहित लंका को उखाड़कर ले आऊँगा।

यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः॥
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लंकारावणपालितम्।
नहि दृक्ष्यामि यदि तां लंकायां जनकात्मजाम्॥
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम्।
यदि वा त्रिदिवे सीतां न दृक्ष्यामि कृतश्रमः॥
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।
सर्वथाकृतकार्योऽहमेष्यामि सहसीतया॥
आनयिष्यामि वा लंकां समुत्पाट्यसरावणाम्।

(सुन्दरकाण्ड प्रथमसर्ग श्लोक ३९, ४०, ४२, ४३)

ब्रह्मचारी हनुमान सीतान्वेषणार्थ रावण के महलों में, रात्रि में विचरण करते हुए मन्दोदरी के महल में भी सोयी हुई अनेक राक्षसियों को प्रसुप्तावस्था में वस्त्राभूषणादि विच्छिन्न देखते हैं, जिससे उन्हें आत्मग्लानि होती है, परन्तु सर्वथाकामरहितमनसा उसका समाधान भी प्राप्त करते हैं। सुन्दरकाण्ड में देखें—

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति॥
कामं दृष्ट्वा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किञ्चिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥

(४/११/३८,४१)

लंका के महलों में भी सीताजी न मिलने पर वे अपना उत्साह भंग नहीं करते। सतत प्रयत्न की प्रेरणा कविकुलशिरोमणि महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में द्रष्टव्य है, सुन्दर नीति श्लोक है-

अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः॥

उत्साह सम्पन्न व्यक्ति ही कार्य में सफलता प्राप्त करता है पुनः उत्साहवर्द्धन हेतु वे अशोकवाटिका में प्रवेश से पूर्व राम, लक्ष्मण, जानकी व रूद्रादि देवों की वन्दना करते हैं-

नमोऽस्तु रामाय स लक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्माजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद् गणेभ्यः॥

अशोक वाटिका को वाल्मीकि ने अशोकवनिका शब्द दिया है। वहाँ शिशुपा वृक्ष के ऊपर बैठे हनुमान जी विचार करते हैं कि जानकी के साथ किस भाषा में वार्तालाप करूँ ताकि यह मुझ पर विश्वास कर सके व मैं श्रीराम का सन्देश सम्यक् रूपेण कह सकूँ। यहाँ हनुमान जी का दूत कौशल, भाषा ज्ञान व नीति निपुणता द्रष्टव्य है। स्वामी के कार्य सिद्धि हेतु अपना संस्कृत भाषा ज्ञान भी ज्ञानिनामग्रगण्य ने छोड़ दिया, वे अयोध्या की समीपवर्ती जनभाषा का ही प्रयोग करते हैं-

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुराम् प्रबुवन् गिरम्।
श्रद्धास्यति यथा सीता, तथा सर्व समादधे॥

(४/३०/१८,१९,४३)

क्रमशः.....

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम		
प्रस्तुति- पूज्या बुआ जी		
दिनाङ्क	विषय	आयोजक तथा स्थान
24 अक्टूबर 2009 से 1 नवम्बर 2009 तक	श्रीरामकथा	श्री हनुमत् धाम - अयोध्या जी जनपद फैजाबाद (उ०प्र०), आयोजक - लाहोटी परिवार मो०- 09440061537
4 नवम्बर 2009 से 12 नवम्बर 2009 तक	श्रीरामकथा	दन्दरौआ डाक्टर हनुमान मंदिर जिला भिण्ड (म०प्र०) आयोजक- महन्त श्रीरामदासजी महाराज
17 नवम्बर 2009 से 24 नवम्बर 2009 तक	108 श्रीमद्भागवतकथा	श्रीराम जी मंदिर, गोण्डल (गुजरात) महन्त श्रीहरिचरण दास जी महाराज

मन को नियन्त्रित रखने से आध्यात्मिक लाभ

□ पं० श्रीविनय कुमार जी

संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने जीवन में प्रत्येक मनुष्य को स्व-कर्तव्यबोध की शिक्षा देते हुए काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों से बचने तथा मन को नियन्त्रित रखने का आदेश दिया है। सुन्दरकाण्ड में इस बात की पुष्टि करते हुए बताया भी है-

**काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु कहहिं सद्ग्रन्थ।।**

यहाँ दोषों को छोड़ दें। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर आदि जो पाप बढ़ाने वाले दुर्गुण हैं, उनका हम परित्याग कर दें और फिर भगवद्भजन में तन-मन को लगायें। जब तक मन में दुर्गुण रहेंगे तब तक न तो भजन होगा, न साधना में मन लगेगा और न भक्ति ही भली प्रकार हो सकेगी।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इसीलिये अर्जुन को समझाते हुए कहा था कि काम, क्रोध, लोभ-ये नरक के मार्ग हैं, जिनसे उत्थान कदापि नहीं हो सकता, अतः अपने जीवन में आध्यात्मिक उत्थान के लिये इनका परित्याग निश्चित रूप से करना पड़ेगा। गीता में भगवान् स्पष्ट रूप से कहते हैं-

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।**

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी महान् संत अथवा व्यक्ति हुए हैं, सभी ने दोषों का परित्याग कर सत्त्व का आश्रय लिया। भक्तराज हनुमान्

जी एक ऐसे भक्त हैं, जिनका चित्त हमेशा भगवान् की सेवा में ही लगा रहता है, वे किसी भी सांसारिक काम, क्रोध, लोभ आदि दोषों से युक्त नहीं होते, प्रत्युत वे अपने लक्ष्य-भगवान् की सेवा-अर्चना आदि पर दृढ़ रहते हैं। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य के प्रति असावधान होते हैं, उनकी तो दुर्गति होती ही है, अपयश भी हाथ लगता है। राक्षसराज रावण विद्वान् था, शास्त्रज्ञ था, परंतु जब वह अपने मन को नियन्त्रित न कर पाया, तो उसे कालकवलित हो जाना पड़ा। जहाँ उसके पुत्र और भाई का भी अंत हुआ, वहीं उसकी प्रिय लंकानगरी भी उसके हाथ से निकल गयी। इसीलिये कहा गया है कि जिसका मन वश में होता है, वह लोक और परलोक दोनों ही जगह लाभ पाता है- 'लोक लाहु परलोक निबाहु।'

आज जब हम अपने जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि हम येन-केन-प्रकारेण स्वार्थलिप्सा में लगे हैं। धर्म-अधर्म या कर्तव्य-अकर्तव्य आदि से कोई सम्बन्ध भी नहीं रह गया है, जब कि शास्त्रों में अच्छे कर्म का लाभ स्पष्ट बतलाया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि अधार्मिकों की दुर्गति देखकर भी जो धर्म में मन नहीं लगाते अथवा मन को वश में नहीं रखते, उनकी बड़ी हानि होती है-
**न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत्।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन् विपर्ययम्।।**

(४/१७१)

जीवन में जिसने अपने विचार अच्छे नहीं रखे अथवा अपना धर्म-कर्म अच्छा नहीं रखा, उन्हें दुःख प्राप्त हुआ। प्रह्लाद का पिता हिरण्यकशिपु अपने आसुरी स्वभाव के कारण अधर्म का आचरण किया करता था। वह देवताओं का भीषण शत्रु बन गया। उसने अपने पुत्र प्रह्लाद को भगवान् के नाम की माला जपने, उनका नाम-स्मरण करने तथा सत्कर्म में प्रवृत्त नहीं होने दिया। इसके लिये प्रह्लाद को अनेक प्रकार से दण्डित भी किया। अन्ततः जीत धर्म की ही हुई। प्रह्लाद को कुछ नहीं हुआ। ऐसा इसलिये हुआ कि प्रह्लाद धार्मिक प्रवृत्ति के थे। उनकी प्रकृति सत्त्वगुण सम्पन्न थी। उन्होंने ईश्वर के प्रति सच्ची और एकनिष्ठ भक्ति की थी। उसी का यह प्रतिफल था कि उनका बाल-बाँका भी न हुआ।

सच तो यह है कि प्रह्लाद जी का मन पूर्णतः नियन्त्रित था और सांसारिक दोषों से मुक्त भी। इसीलिये प्रह्लाद जी की रक्षा के लिये भगवान् खंभे को फाड़कर बाहर आ गये। राणा ने मीरा को विष का प्याला पीने के लिये भेजा। मीरा जानती थी कि यह विष है फिर भी वह हँसते-हँसते पी गयी, और उसे कुछ न हुआ, क्योंकि उसके रक्षक थे 'दीनदयालु कृपालु नाथ।'

संसार का समस्त दोष, शोक, अशान्ति और दुःख एक मन से ही निष्पन्न होता है। इसीलिये तो कहा गया है-

जहाँ योग तहँ भोग नहिं, जहाँ भोग तहँ रोग।

वस्तुतः जहाँ सांसारिक आसक्ति होगी, वहाँ दुःख-दारिद्र्य, अशान्ति आदि की प्राप्ति होगी। इसीलिये कहा गया है कि सब कुछ छोड़कर परमात्मा का भजन करो। अन्यथा पछताना पड़ेगा- 'मन पछितैहै अवसर बीते।' मानवयोनि बार-बार नहीं मिलती। संत कवि गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने पहले भी कह दिया है-

बड़े भाग मानुष तन पावा।

सुर दुर्लभ सब ग्रंथनि गावा।।

जो व्यक्ति मन को वश में नहीं करेगा, वह साधना कैसे कर सकता है और उसकी साधना सफल कैसे हो सकती है?

अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हमें अपने चरित्र का निर्माण करते हुए मन को वश में करना चाहिये। मन ही सब दुःखों का कारण है। मन से ही सुख-शान्ति भी मिलती है। आज हम प्रायः छोटी-से-छोटी बातों पर क्रोध कर डालते हैं, अकरणीय कार्य करते हुए हर्षोन्मत्त हो फूले नहीं समाते। साथ ही शास्त्र-विहित कर्म का भी परित्याग करने में अपना गौरव-सा अनुभव करते हैं। इससे हमारा चरित्र, मन और तन प्रभावित होता है। मन जब तक पवित्र नहीं बनेगा, तब तक हमें सच्चा सुख और सच्ची शान्ति कदापि नहीं मिल सकेगी।

अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मन को वश में रखने का प्रयत्न करना चाहिये। ऋग्वेद (१।२५।२१)- में कहा गया है कि 'उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत अवाधमानि जीवसे।' अर्थात् पुत्रैषणा,

वित्तैषणा और लोकैषणा की भावना से हम उन्मुक्त रहें, क्योंकि ये ही वे शत्रु हैं, जिनसे हमारी आत्मा पतित होकर बारंबार दुःख पाती है।

अतः अपनी इन्द्रियों को हम परमात्मा के कार्यों में लगाये रखें, इसी से हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

पवित्र कर्म से मुक्ति मिलती है जब कि अपवित्र और निकृष्ट कर्मों से पाप की प्राप्ति होती है। सच तो यह है कि श्रेष्ठ साधनारत पुरुष परमात्मा की उपासना तथा पवित्र कर्मद्वारा अपने दुःख और भव-बन्धनों को काटकर सुख प्राप्त करते हैं। हमें भी उनकी तरह परोपकारपूर्ण श्रेष्ठ कर्मों द्वारा सुख-शान्ति एवं सुयश प्राप्त करने तथा दुःखप्रद सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

मन जब पूर्णतः नियन्त्रित हो जाता है, तब दिव्य सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है। मन को नियन्त्रित करने के लिये जहाँ धर्म और सदाचार का पालन बतलाया गया है, वहाँ अच्छी संगति से भी लाभ मिलता है। मनुस्मृतिकार ने कहा है कि सच्ची रीति से संचित धन ही पवित्र धन है और यही जीवन में सुख-शान्ति पहुँचाता है। इसलिये सभी कर्मों में पवित्रता अर्थात् शुचिता को प्रश्रय देना चाहिये—

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थं शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः॥

(५/१०६)

जहाँ पवित्रता निवास करती है, वहाँ पर सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ स्वयमेव पहुँच जाती हैं। पवित्र कर्म करने से मन भी पवित्र बन जाता है। पवित्र मन से पाप कर्म नहीं होते तथा मन भी नियन्त्रित होता है, साथ ही चित्त परिष्कृत भी बनता है।

चाणक्यनीति में इसीलिये कहा गया है कि कभी भी मन को पापकर्म में न लगायें। कामादि-जन्य व्यभिचार तो एक ऐसा महारोग है, जिसके समान दूसरा कोई रोग नहीं है। मोह और क्रोध ऐसे शत्रु हैं जो मन-तन को रुग्ण और दग्ध करके जलाते रहते हैं परंतु जब ज्ञान का अभ्युदय होता है, तब मनस्ताप मिटने लगता है और विचार-प्रवाह शुद्ध बनने लगता है साथ ही परम सुख की प्राप्ति भी हो जाती है—

नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात् परं सुखम्॥

अस्तु, हम मन के दोषों का परित्याग कर पवित्र वातावरण का सृजन करें। ऐसा पवित्र और निष्कलुष वातावरण बना लें कि हमारा जीवन उच्च आदर्शों से युक्त बन जाय। हम सांसारिक बन्धन का परित्याग करते हुए यह अनुभव करें कि सत्य ही मेरी माता है, ज्ञान ही मेरा पिता है, धर्म ही मेरा भाई है, दया ही मेरा मित्र है, शान्ति ही मेरी स्त्री है और क्षमा ही मेरा पुत्र है अर्थात् ये छः मेरे सच्चे एवं परम हितैषी बन्धु-बान्धव हैं—

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः॥

(चाणक्यनीतिदर्पण)

□□□

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

आश्विन शुक्लपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
द्वादशी	गुरुवार	धनिष्ठा	1 अक्टूबर	प्रदोष व्रत
त्रयोदशी	शुक्रवार	शतभिषा	2 अक्टूबर	—
चतुर्दशी	शनिवार	पू०भा०	3 अक्टूबर	सत्यनारायण व्रत—शरद् पूर्णिमा
पूर्णिमा	रविवार	उ०भा०	4 अक्टूबर	महर्षिवाल्मीकिजयन्ती

कार्तिक कृष्णपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	सोमवार	रेवती	5 अक्टूबर	पंचक दिन के 11/14 तक
द्वितीया	मंगलवार	अश्विनी	6 अक्टूबर	—
तृतीया	बुधवार	भरणी	7 अक्टूबर	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत (करवा चौथ) चन्द्रोदय 7 बजकर 47 मिनट
चतुर्थी	गुरुवार	कृतिका	8 अक्टूबर	—
पंचमी	शुक्रवार	रोहिणी	9 अक्टूबर	—
षष्ठी	शुक्रवार	रोहिणी	9 अक्टूबर	षष्ठी तिथि का क्षय
सप्तमी	शनिवार	मृगाशिरा	10 अक्टूबर	—
अष्टमी	रविवार	आर्द्रा/पुनर्वसु	11 अक्टूबर	श्रीदुर्गाष्टमी, अहोई अष्टमी व्रत
नवमी	सोमवार	पुष्य	12 अक्टूबर	—
दशमी	मंगलवार	श्लेषा	13 अक्टूबर	—
एकादशी	बुधवार	मघा	14 अक्टूबर	रमा एकादशी व्रत (सबका)
द्वादशी	गुरुवार	पू०फा०	15 अक्टूबर	गोवत्स द्वादशी—प्रदोष व्रत
त्रयोदशी	शुक्रवार	उ०फा०	16 अक्टूबर	धनत्रयोदशी— श्रीहनुमज्जयन्ती, नरक चतुर्दशी
चतुर्दशी	शनिवार	हस्त	17 अक्टूबर	सूर्य तुला में—संक्रान्ति वार— दीपावली पर्व
अमावस्या	रविवार	चित्रा	18 अक्टूबर	अन्नकूट गोवर्द्धन पूजा

कार्तिक शुक्लपक्ष/सूर्य दक्षिणायन, शरद् हेमन्त ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	सोमवार	स्वाति	19 अक्टूबर	चन्द्रदर्शनम्—भाईदूज विश्वकर्मा पूजन
द्वितीया	मंगलवार	विशाखा	20 अक्टूबर	—
तृतीया	बुधवार	अनुराधा	21 अक्टूबर	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
चतुर्थी	गुरुवार	ज्येष्ठा	22 अक्टूबर	—
पंचमी	शुक्रवार	मूल	23 अक्टूबर	—
षष्ठी	शनिवार	पू०षा०	24 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी व्रत (बिहार)
सप्तमी	रविवार	उ०षा०	25 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी व्रत की पारणा
अष्टमी	सोमवार	उ०षा०	26 अक्टूबर	श्रीदुर्गाष्टमी—गोपाष्टमी गौ पूजन
नवमी	मंगलवार	श्रवण	27 अक्टूबर	पंचक प्रारम्भ 1/17 रात से अक्षय नवमी
दशमी	बुधवार	धनिष्ठा	28 अक्टूबर	—
एकादशी	गुरुवार	शतभिषा	29 अक्टूबर	देव प्रबोधिनी एकादशी व्रत (सबका) श्रीतुलसीशालग्रामविवाह